लेखक- प्रोफेसर नन्दकिशोर विद्यालंकार

पुनर्जन्म.

भूमिका लेखक- श्री. १०८ स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

निश्चय जानिये आप इस संसारमें बहुत पुराने हैं, और सदा रहेंगे। इसलिये यदि आप को 'मृत्यु' के इस भीषण नाटक का पूरा हाल जानना हो और यह जानना हो कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्माकी क्या गति होती है। पितृयान और देवयान मार्ग क्या हैं। उपनिषदों में स्थानस्थान पर दिये गये जीवन मरण के कितने ही रहस्यों को यदि आप सरल हिन्दी में पढना चाहते हैं। यदि आप जानना चाहते हैं कि किस प्रकार आजकल के धुरन्धर पश्चमीय विद्वान् आपके प्राचीनतम वैदिक सिद्धान्तोंके आगे शिर झुकाते जाते हैं। पश्चिमके घोर नास्तिक वाद तथा डार्विन के विकासवाद की यदि आप तीव्र आलोचना पढना चाहते हैं तो इस अलौकिक ग्रन्थ को पढिये।

इस ग्रन्थको पढनेसे आपको प्रकृति के निराले पशुपक्षियों के अद्भुत प्रतिभाभरे कौतुकोंका पता लगेगा। सृष्टि उत्पत्तिके वैदिक प्रकारण को अधुनिक विज्ञानके साथ मिलाकर मनोहर रूपमें दर्शाया गया है। इस ग्रन्थसे आपको जर्मनी में किये गये घोडों पर नवीन परीक्षणों का वृत्तान्त विदित होगा। ग्रन्थ-का विषय दार्शनिक होते हुए भी उसे मनोरञ्जक भाषा में रक्खा गया है —इस लिये यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी है। श्री. स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज भूमिका लेखक के अतिरिक्त अन्य विद्वान् क्या लिखते हैं देखिये:—

"ग्रन्थकर्त्ताने 'पुनर्जन्म' की सचाई को साधारण जन के आगे स्पष्ट तथा सरल भाषामें रखकर देशकी और विशेषत: हिन्दी साहित्यकी बडी सेवा की है।"

श्रीयुत डाकटर गङ्गानाथ झा, वाइस चान्सलर अलाहाबाद युनिवर्सिटी।

"मेरी सम्मतिमें इस पुस्तकमें 'पुनर्जन्म' सिद्धान्तके मुख्य मुख्य अङ्गोंको सरलता के साथ विशदरूपमें रखनेमें ग्रन्थकर्ताको पूर्णतया कृतकार्यता हुई है। और मुझे यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दीके विज्ञ पाठक इस पुस्तकका पूरा आदर करते हैं।

(श्री० डॉ० प्रभुदत्त शास्त्री एम० ए० पी० एच. डी०, प्रेसिडेन्सी कालेज-कलकत्ता युनिवर्सिटी)

"ग्रथकर्ताकी मूल पुस्तकको मैने देखा था और प्रशंसा की थी-मेरी सम्मतिको स्वीकार कर ग्रन्थकर्ता ने इसे प्रकाशित किया और हिंदी भाषाका उपकार किया यह देखकर मुझे बडी प्रसन्नता है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि पुस्तकका आदर हो। (बा० भगवानदास एम० ए० बनारस)

इतनी उपयोगी पुस्तकका दाम केवल १।)

वर्ष ६
अंक ८
क्रमांक ६८

श्रावण
संवत १९८२
अगस्त
सन १९२५

वैदिकधर्म.

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।
संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

हमारी उन्नति ।

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत । स्वस्ति भूमे नो भव मा
विदन्परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥

अ. १२।१।३२

हे (भूमि) मातृभूमि ! (नः) हमको (मा पश्चात्) न पीछे से, (मा पुरस्तात्) न आगेसे, (मा उत्तरात्) न ऊपरसे, (उत) और (न अधरात्) न नीचेसे (नुदिष्ठाः) पीछे हटाओ । (नः स्वस्ति भव) हमारे लिये कल्याण कारिणी हो । (परिपंथिनः) बटमार चोर और दुष्ट हमको (मा विदन्) न मिलें और (वधं) मृत्युको हमसे (वरीयः) बहुत ही (यावय) दूर हटा दे ।

हमें किसीभी स्थानसे प्रतिबंध न हो, हम सब दिशाओंमें अपनी प्रगति और उन्नति करते हुए आगे बढें, कोई भी शत्रु हमपर हमला न करे, और किसी दुष्टके कारण हमारा वध न हो । अर्थात् हमारी प्रगति होकर सब प्रकार हमारा कल्याण हो । दिन प्रतिदिन हमारी उन्नति होती रहे ।

यम यमी सूक्त पर विचार।

[श्री० पं० चंद्रमणिजी विद्यालंकार, स्नातक गुरुकुल कांगडी, पालीरत्न, निरुक्त भाष्यकार तथा वेदाध्यापक गुरुकुल कांगडी, द्वारा यह लेख हमारे पास प्रसिद्धी के लिये आया है। जैसा कि हमने पूर्व प्रसिद्ध किया था, हमारा विचार यमयमी सूक्तपर पुनः लिखकर अपना और पाठकोंका समय नष्ट करनेका नहीं था। परंतु यह लेख विशेष विचार पूर्ण है और इसमें कई विचार नवीन हैं इस लिये यह पाठकोंके सन्मुख रख देते हैं। पं० चंद्रमणिजी स्वयं निरुक्त भाष्यकार होनेके कारण इनके लेखका प्रामाण्य विशेष है, पाठक इस दृष्टिसे इस लेखको पढें। पंडितजीने यही लेख विस्तार से गुरुकुल पत्रिका "अलंकार" में मुद्रित किया है और यम-यमी सूक्तकी विशेष व्याख्या भी की है। पाठक "अलंकार" मे इस विशेष लेख को अवश्य पढें।
संपादक-वैदिकधर्म]

यमयमी–सूक्त।

(ले०-श्री.पं. चन्द्रमणि विद्यालंकार, पालीरत्न)

श्री. पं. चमूपति जी एम. ए. ने यमयमी-सूक्त की विचित्र व्याख्या करते हुए जिस अनर्गल प्रणाली का आश्रय लिया है और जिस प्रकार वैदिक शब्दों का अनर्थ किया है, उसे देख कर अत्यन्त खेद होता है और सहसा महाभारत की यह उक्ति स्मरण आ जाती है 'बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति'। क्या इस प्रकार की व्याख्याओं से वेद का उद्धार होगा या संहार होगा? यदि इस प्रकार के व्याख्यान वेद-भक्तों की भक्ति को बढाने लगे तो समझिए, वेदोद्धार का कार्य उस से भी अधिक पीछे पड जावेगा।

पं. चमूपति जी ने अपने दोनों लेखों में मुख्यतया चार स्थापनायें की है, जिन पर उनका संपूर्ण महल खडा है। वे चार स्थापनायें ये हैं:—

१ यमयमी पतिपत्नी हैं।
२ भ्राता स्वसा का अर्थ पति पत्नी है।
३ 'यम' सन्यासी होने वाला बैरागी है।
४ ऋषि दयानन्द 'यम' के इस भाव के पोषक हैं।

१. यमयमी पतिपत्नी हैं ?

१. ब्राह्मण ग्रन्थोंका अनर्थ—पं. चमूपति जी ने यमयमी को पतिपत्नी सिद्ध करने के लिये ब्राह्मण वचनों का जो अनर्थ किया है वह अत्यन्त खेद जनक है।

(क) 'अग्निर्वै यम इयं (पृथिवी) यमी आभ्यां हीदं सर्वं यतम्' इस शतपथ के प्रमाण (७.२.१.१०.) को प्रस्तुत करते हुए परिणाम निकालते है कि यहां यम यमी का संबन्ध पति पत्नी काही प्रतिपादन किया हुआ है।

यहां तो यम यमी का कोई भी संबन्ध प्रतिपादन नहीं किया, प्रत्युत 'आभ्यां हीदं सर्वं यतम्' के अनुसार 'यम' धातु से यम यमी का निर्वचन करते हुए पुल्लिङ्ग होने से अग्नि का नाम यम और पृथिवि को यमी बतलाया है। आप लिखते हैं— "लीजिए तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'अग्ने पृथिवीपते' यह पाठ मिलता है। सम्भव है आपको आपत्ति हो कि 'पति' का अर्थ यहां स्वामी है। आगे चल कर कहा है 'तास्मिन योनौ प्रजनौ प्रजायेय' अर्थात् इसगर्भ में मैं गर्भाधान करूं। प्रकरण उस प्रकार के पतित्व का हैं जिससे प्रजनन होता है"।

वाचकवृन्द ! इस स्थलपर तो हमारे योग्य पण्डित जी ने विचित्र कौशल दर्शाया है।—

अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि, अनमीवस्य शुष्मिणः
प्र प्र दातारं तारिषः, ऊर्जं नो धेहि द्विपदे
चतुष्पदे॥"

अग्ने पृथिवीपते ! सोम वीरुधां पते ! त्वष्टः समिधां पते! विष्णवाशानां पते! मित्र सत्यानां पते! मरुतो गणानां पतयः! रुद्र पशूनां पते! वरुण धर्मणां पते! इन्द्रौजसां पते! बृहस्पते ब्रह्मणस्पते! आरुचा रोचेऽहं स्वयम्, रुचा रुरुचे रोचमानः। अतींत्यादः स्वरामगेह, तस्मिन्योनौ प्रजनौ प्रजायेय। वयं स्याम पतयो रयीणाम्। भूर्भुवः स्वः स्वाहा॥ काठ० ११ प्रपा० ४अनु०

अर्थ—हे अन्नपति परमेश्वर! हमें आरोग्य तथा बल को देने वाले अन्न को प्रदान कीजिए। आत्मसमर्पक अपने भक्त को दुःख सागर से तराइए। और, हमारे मनुष्यों तथा पशुओं में बल को स्थापित कीजिए।

पृथिवी के स्वामी अग्रणी! औषधिओं के मालिक शान्तिधाम! चन्दनादि शुष्क इन्धनों के पति दीप्तिमान! दिशा उपदिशाओं के स्वामी सर्वव्यापक! सत्य नियमों के स्वामी मित्र! सत्य धर्मों के पति पापान्धकार-निवारक! वसु रुद्र आदित्य आदि गणों के स्वामी जीवनाधार! पशुओं के स्वामी रोगनिवारक! बलों के भण्डार, सामर्थ्यशाली होते हुए दुष्टों के विदारक! महती वाणी के पति वेदपति-परमात्मन्! मै सात्विक अन्न के सेवन द्वारा स्वयं दीप्ति से प्रदीप्त होऊं और स्वयं प्रदीप्त होता हुआ अपनी दीप्ति से दूसरों को भी प्रदीप्त करूं। हे प्रभो! सांसारिक सुख को छोडकर उस पारलौकिक सुख को मुझ में धारण कीजिये, अर्थात् अभ्युदय के पश्चात् निःश्रेयस सुख की प्राप्ति कराइए। ऐसे सुखसम्पन्न गृहस्थधाम में प्रकृष्ट सन्तान को पैदा करूं। एवं, हम सब भूलोक अन्तरिक्षलोक और द्युलोक-तीनों लोकों के धनों के स्वामी बनें। प्रभो! यह मेरी प्रार्थना है यही हार्दिक प्रार्थना है।

वाचकवृन्द ! यह है प्रकरण। उपर्युक्त प्रकरण के इतने स्पष्ट होते हुए पं० चमूपतिजी को अग्नि तथा पृथिवी का परस्पर में पतिपत्नी संबन्ध जोडने की न जाने कैसे सूझी!

'अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि' आदि मन्त्र यजुर्वेद के ११ वें अध्याय का ८३ वा मंत्र है। उसी की विस्तृत व्याख्या यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण ने की है।

(ग) गोपथ उ० २. ९ का 'पृथिव्यग्नेःपत्नी'प्रमाण पेश करते हुए पं० चमूपति जी लिखते हैं ''यम यमी का पतिपत्नीभाव इससे तो नितरां स्पष्ट ही है कि अग्नि (यम) की पृथिवी (यमी) पत्नी है।

पाठक वृन्द ! जरा इस अमोघ अस्त्र की भी जांच कर लीजिये। गोपथ का उपर्युक्त प्रकरण इस प्रकार है—

आग्नीध्रो देवपत्नीर्व्याचष्टे । पृथिव्यग्नेः पत्नी, वाग् वातस्य पत्नी, सेनेन्द्रस्य पत्नी, धेना बृहस्पतेः पत्नी, पथ्या पूष्णः पत्नी, गायत्री वसूनां पत्नी, त्रिष्टुप रुद्राणां पत्नी, जगत्यादित्यानां पत्नी, अनुष्टुप् मित्रस्य पत्नी, विराड् वरुणस्य पत्नी, पंक्तिर्विष्णोः पत्नी, दीक्षा सोमस्य राज्ञः पत्नीति।

मैं इसकी व्याख्या पण्डित जी पर ही छोडता हूं। वे ही बतला दें कि इस स्थल पर पतिपत्नी के संबन्ध का क्या रहस्य है ? अथवा यहां 'पत्नी' शब्द किसी और ही अर्थ का द्योतक है जो आप के अभिप्राय को सिद्ध नहीं करता ? एवं कोई भी ब्राह्मण-वचन पण्डित जी के मत का पोषक नहीं दीख पडता।

(२) सूक्त की अन्तःसाक्षि पतिपत्नी के विरुद्ध है—परन्तु इसके विपरीत यम यमी सूक्त की अन्तः साक्षि यमयमी के पतिपत्नी-भाव को पुष्ट नहीं करती, प्रत्युत उसके सर्वथा विरुद्ध ही पडती है। सूक्त के सातवें मंत्र में आता है 'जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्याम्'। इसका अर्थ पण्डित जी भी यही करते हैं कि

पति के लिये जायारुप में मैं अपना शरीर प्रकट करूं इसस अत्यन्त स्पष्ट है कि 'यमी' अभी 'यम' की जाया अर्थात् पत्नी नहीं परन्तु पत्नी बनना चाहती है।

(३) यास्क पति पत्नी के विरुद्ध है – (क) यदि 'अग्निर्वै यम इयं यमी' इस शतपथ—वचन का आश्रय लेकर प्रस्तुत सूक्त में यमयमी को पति पत्नी माना जावे तो यह यास्कमत के सर्वथा विपरीत है। अग्नि और पृथिवी देवता पृथिवीस्थानीय हैं। परन्तु यास्क इस सूक्त में यम यमी को मध्यमस्थानिय देवता मानता है (निरु० ११अ०२४श०)

(ख) और यदि 'यमी' यमपत्नी होती तो यास्क यमी का निर्वचन' यमस्य पत्नी 'ऐसा अवश्य करते जैसा कि इसी ११ वें अध्याय में आये इन्द्राणी का 'इंद्रस्य पत्नी' और 'रोदसी' का 'रुद्रस्य पत्नी किया है। अतः स्पष्ट है कि यास्क 'यमी' को 'यमपत्नी' नहीं समझते।

२. भ्राता और स्वसा का अर्थ ।

जो विद्वान् अपनी माया से यम यमी को उपर्युक्त ब्राह्मण —वचनों में पतिपत्नी दिखला सकते हैं, उनके लिये यह कोई कठिन कार्य नहीं कि भ्राता को पति और स्वसा को पत्नी बनादें। आइए, इस की भी परीक्षा कर लें।

भ्राता – सायण और यास्काचार्य के प्रमाण देते हुए आपने भाई के अतिरिक्त भ्राता के भर्ता, पोषक, भागहर्ता- ये अर्थ और दिये हैं। और लिखा है " लौकिक भाषा में भ्राता शब्द का प्रयोग केवल भाई अर्थ में होता है, पोषक तथा भागहर्ता इन अर्थों में केवल वेदही में इस शब्द का प्रयोग है"।

पण्डित जी यहां कुछ भ्रम में पड गये हैं। वह यह भूल गये हैं कि भाइ के वाचक 'भ्राता' शब्द

का कैसा निर्वचन है । यास्क का पाठ पण्डित जी ने पूरा नहीं किया मैं उसे पूरा कर देता हूं—"भरते-र्हरतिकर्मणो हरते भागं भर्तव्यो भवतीति वा।" भाई के वाचक भ्राता शब्द के ही ये तीन निर्वचन हैं। भर्ता (पोषक), भागहर्ता, और भर्तव्य होनेसे भाई को भ्राता कहते हैं। पिता के पश्चात् भाई ही बहिन का पोषक होता है अतः वह भर्ता है, भाई दायभाग का आहरण करता है अतः वह भागहर्ता है, भाईभाई को परस्पर में एक दूसरे की पालना करनी चाहिए अतः वह भर्तव्य है।

पंडित जी द्वारा निर्दिष्ट 'परायाहि मघवन्, (ऋ० ३. ५३. ५) और 'अस्य वामस्य पलितस्य' (ऋ. १.१६४.१) मंत्रों में आये 'भ्राता' शब्द का अर्थ भर्ता भाई ही है अन्य कुछ नहीं। 'अस्य वामस्य' मंत्र में सूर्य अशनि और अग्नि इन तीन को भाई बतलाते हुए त्रिविध अग्नि का प्रतिपादन किया है। मंत्र तथा 'भ्राता' शब्द की विस्तृत व्याख्या लेखक ने वेदार्थदीपक निरुक्तभाष्य में की है।

स्वसा—'स्वसृ' शब्द के निर्वचन में पंडित जी यास्क (११ अ० ३२ ख०) को बिलकुल भूल गये, क्योंकि वह उनके विपरीत पड़ता था।

'स्वसृ' का अर्थ अंगुलि निघण्टु— पठित है और सायण ने ऋ०१. ९२. ११ में 'स्वसारम्' का अर्थ 'स्वयमेव सरन्तीं निशाम्' किया है, अतः 'स्वसृ' का अर्थ 'अभिसारिका पत्नी' भी है।

इस अद्भुत तर्क को देखिये क्या उत्तम परिणाम निकलते हैं!! 'पिता' का अर्थ बाप, सूर्य, परमेश्वर, गुरु उपदेशक है, अतः पालक होने से पति भी पिता है। 'मातृ' का अर्थ मां, परमेश्वर, प्रकृति है, अतः उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थों के बनाने से पत्नी भी माता है। भगवन्! ऐसे कुतर्क से काम नहीं चलेगा।

मैं निश्चय से कह सकता हूं कि अभी तक किसी भी प्राचीन आचार्य ने भ्राता का अर्थ पति और स्वसा का अर्थ पत्नी नहीं किया। यदि किया है तो पण्डित जी उसका प्रमाण पेश करें। बिना प्रमाण के पण्डित जी का तर्क लंगडा है और भयंकर गढे में गिराने वाला है।

शब्दों के यौगिकत्व से यह अभिप्राय नहीं कि आप मनघडन्त अर्थ करते जावें। यदि यह विचार है तो सर्वथा अशुद्ध और निरुक्त-शास्त्र के विपरीत है। इस विचार को एकदम मन से दूर कर देना चाहिए। लौकिक भाषा में पाचक, कहार (क = उदक), परिव्राजक आदि यौगिक शब्द हैं परन्तु फिर भी वे रसोइए, जल भरने वाले कहार और पर्य्यटन करने वाले सन्यासी के लिये ही प्रयुक्त होते हैं। पण्डित जी के मतानुसार प्रत्येक गृहिणी को पाचिका, सब मनुष्यों और स्त्रिओं को कहार या कहारी और प्रत्येक चलने फिरने वाले स्त्री पुरुष को परिव्राजिका या परिव्राजक नहीं कहा जाता। हमें आश्चर्य है कि वेदाध्ययन के इन प्रारम्भिक नियमों की ओर तनिक भी ध्यान क्यों नहीं दिया गया।

३. यम सन्यासी होने वाला वैरागी है।

पं० चमूपति जी लिखते हैं कि प्रस्तुत सूक्त में 'यम' सन्यासाश्रम में प्रवेशेच्छुक संयमी महात्मा है। सूक्त-रचना को देखने से स्पष्टतया पता लगता है कि यम ऐसा पुरुष नहीं।

(क) लम्बे संवाद के पश्चात् १२ वें मंत्र में यम ने पतिपत्नी के संबन्ध की अन्तिम अस्वीकृति बडे प्रबल शब्दों में प्रकाशित करदी। और संबन्ध न करने का कारण 'पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्'

करते हुए 'न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत्' से जतला दिया कि बस मैं यह संबन्ध नहीं करूंगा। यदि वह सन्यासी होना चाहता है और इसलिये संबन्ध नहीं करता तो वही कारण बतलाना चाहिए था, पाप कारण नहीं हो सकता। पाप तो कारण तब होता जब कि वह वनस्थ या संन्यस्त अवस्था में होता। जब तक उसने गृहत्याग नहीं किया तब तक धर्मानुसार ऋतुगामी होने पर कोई पाप नहीं। पाप की युक्ति तभी चरितार्थ हो सकती है जब कि यम यमी की संबन्ध पति पत्नी का न हो।

(ख) जब 'यमी' यम के अन्तिम वचन से निराश हो गई तब वह १३ वें मंत्र में कहती है कि मैं तेरे मन और हृदय को नहीं खींच सकी। अस्तु, तू किसी अन्य स्त्री के साथ ही संबन्ध स्थापित करेगा। उसके उत्तर में इसके अन्तिम मंत्र में यम कहता है, हां, तू किसी अन्यपुरुष को ही अपना पति बना। साफ है कि दोनों ही गृहस्थ-धर्म को तो पालन करना चाहते हैं, परन्तु परस्पर में नहीं।

इस स्पष्ट वर्णन को पं० चमूपति जी ने 'स्त्री-सुलभ तीक्ष्णता से कटाक्ष किया' और 'यम यह कहां स्वीकार करता है कि मैं दूसरी स्त्री को आलिङ्गन दूंगा' कह कर टालना चाहा है। आश्चर्य है, पण्डित जी ने यहां पर सभ्य तरीके के मनुष्य स्वभाव को सर्वथा भुला दिया। यदि कोई स्त्री किसी दूसरे पुरुष से विवाह-संबन्ध का प्रस्ताव करती है तो अनिच्छा होने पर यही उत्तर मिलेगा कि मैं आप से संबन्ध नहीं करना चाहता। उसके साथ यह कभी नहीं कहा जावेगा मैं अमुक के साथ संबन्ध करूंगा। वैदिक धर्म मनुष्य-स्वभाव के इस उच्च तरीके की शिक्षा क्यों न देता। अतः, १३ वें मंत्र के पूर्वार्ध का ही उत्तर देना उचित था और 'अन्या किल त्वां' इत्यादि उत्तरार्ध के लिये मौनावलम्बन ही योग्य था।

(ग) नियोग के प्रतिपादन के लिये सन्यासी होने वाले यम और उस की पत्नी का यह संवाद किसी उच्च भाव का द्योतक नहीं। यदि गृहस्थाश्रम में ही किसी महात्मा को पूर्ण वैराग्य उत्पन्न होगया हो तो वैदिक मर्यादा से परिपूरिता सहधर्मिणी का भी वैसा ही उज्वल चारित्र खींचना बड़ा भावपूर्ण होता। आप ही विचारिए कि बड़े परिश्रम से अत्यन्त खींचतानी के साथ आपके मतानुसार यमयमी-सूक्त का अर्थ करने पर भी एक यति सन्यासी की सहधर्मिणी का यह चरित्र शोभाजनक है या उपनिषत्प्रतिपादित याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी का 'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्य्याम्' इत्यादि-चरित्र उज्वल है? नियोग का प्रतिपादन तो किसी अन्य विधि से और इस से भी अच्छे तरीके पर हो सकता था। अतः, बलात्कार 'यम' को 'सन्यासी होने वाला' मानकर सूक्त की संगति लगाना वेद के गौरव को घटाना है।

(घ) 'नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे' आदि पराशर-स्मृति का प्रमाण उद्धृत करते हुए पं० चमूपति जी लिखते हैं कि सन्यासी हो जाने पर सन्तानाभाव में पत्नी को नियोग करने का अधिकार है। ठीक है, परन्तु आपका यम तो सन्यासी नहीं है सन्यासी होना चाहता है। इस सूक्त के प्रथम ही मंत्र में आप 'पितुर्नपातमादधीत' वाक्य का अर्थ 'अपने पिता की सन्तति को चलावे' करते हुए पण्डित जी भी इस बात को स्वीकृत करते हैं कि 'यम' की अभी कोई सन्तान नहीं हुई। क्या वह यम विवाह करते ही पूर्ण वैरागी होगये?

और क्या इस बात की वेद आज्ञा दे सकता है कि कोई मनुष्य विवाह करते ही बिना सन्तानोत्पत्ति किये घर छोड कर भाग जावे और पत्नी को दुरवस्था में डाल दे ? यदि ऐसा आकस्मिक वैराग्य है तो मैं समझता हूं वह सर्वथा झुटा वैराग्य ही होगा उसे हम सच्चा और पूर्ण वैराग्य कभी नहीं कह सकते। यदि उस वैरागी ने गृह-त्याग करना ही था तो दो मास के पश्चात् भी कर सकता था, इस अन्तर में गर्भाधान करके पितृ ऋण से मुक्त हो जाता और व्यर्थ में ही पत्नी को आपत्काल में डाल कर नियोग के लिये बाधित न करता।

४. ऋषि दयानन्द के अर्थ से विरोध।

पं० चमूपति जी ने 'यम' को सन्यासी मानकर यथा कथंचित् यमयमी-सूक्त की संगति लगाने का प्रयत्न केवल इस लिये किया है कि आचार्य दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में 'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्' की व्याख्या नियोग परक की है। परन्तु पता लगता है कि ऋषि के पोषक पण्डित जी ने संगति लगाते समय सत्यार्थ प्रकाश के उस स्थल को भी पढने का कष्ट नहीं किया। आप ऋषि दयानन्द के नाम पर सूक्त की संगति तो लगाने बैठे, परन्तु संगति लगाते लगाते ऋषि के अर्थ से अत्यन्त दूर चले गये, और अपनी मनघडन्त व्याख्या को आर्षानुकूल प्रसिद्ध किया !!!

अब आप ऋषि के ही शब्दोंमें 'अन्यमिच्छस्व' की व्याख्या देखिये—

"जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि (सुभगे !) हे सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री ! तूं (मत्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर, क्यों कि अब मुझ से सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी। तब स्त्री दूसरे से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करे, परन्तु उस विवाहित महाशय पति कि सेवा में तत्पर रहे। वैसे ही स्त्री भी जब रोग आदि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे, तब अपने पति को आज्ञा देवे कि हे स्वामी ! आप सन्तानोत्पत्ति की इच्छा मुझ से छोड के किसी दूसरी विधवा स्त्रीसे नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कीजिये"।

"जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे' इस वाक्य को "वैसे ही स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे" इस वाक्य के साथ मिला कर संगति लगाने से साफ पता लगता है कि यहां रोगजन्य असमर्थता ही अभिप्रेत है सन्यासिजन्य असमर्थता नहीं और फिर 'परन्तु उस विवाहित महाशय पति कि सेवा में तत्पर रहे' यह वाक्य ऋषि के भाव को और भी स्पष्ट कर देता है।

यहां तो स्वामी जी को 'यम' का अर्थ 'सन्यासी' अभिप्रेत ही नहीं।

'यमाय' का अर्थ यजुर्वेद ७. ४१ में ऋषिने गृहस्थाश्रमजन्यविषयसेवना दुपरताय यमनियमादि युक्ताय' किया है और यहां सत्यार्थप्रकाश में यमयमी सूक्तान्तर्गत 'अन्यमिच्छस्व सुभगे पति मत्' का अर्थ नियोग परक किया है, अतः इस सूक्त में ऋषि को 'यम' से सन्यासी अभिप्रेत है-यह संयोजन 'कहीं का ईंट कहीं का रोडा भानमती ने कुणबा जोडा' के समान ही है।

पाठकगण ! पंडित जी की इन चारों स्थापनाओं में कितना बल है, यह आपने जांच लिया। ऐसी

स्थापनाओं के आधार पर भवन कितना दृढ बन सकता है, इसे आप स्वयं ही विचार सकते हैं। स्पष्ट है कि उस में अवश्यमेव अनेक दोष होंगे। अतः, उन सब की यहां समालोचना न करते हुए हम यथार्थ पक्ष की स्थापना करते हैं। उस में यथावसर कुछ एक अन्य दोषों की भी परीक्षा हो जावेगी।

स्वपक्ष– स्थापन।

(१) हमारा मत है कि प्रस्तुत सूक्त में यम यमी निस्सन्देह भाई बहिन हैं। इसकी पुष्टि के लिये हम निम्न लिखित प्रमाण पेश करते हैं –

(क) अन्तःसाक्षि -- किसी की पुष्टि के लिये सब से प्रबल प्रमाण अन्तःसाक्षि ही हुआ करता है। मंत्र ११ में यम यमी के लिये 'भ्राता' 'स्वसा' का प्रयोग किया गया है। और १२ वें मंत्र 'पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्' में फिर यमी के लिये 'स्वसारं' प्रयुक्त है। ये शब्द सिवाय भाई बहिन के अन्य किसी भाव में कभी प्रयुक्त ही नहीं होते–यह हम पहले दर्शा ही चुके हैं।

(ख) लौकिक संस्कृत का प्रमाण.--- पं. चमूपति जी व्याकरण का सहारा लेकर बडे दावे के साथ कहते हैं कि 'यम' की बहिन 'यमा' हो सकती है 'यमी' कभी नहीं। 'यमी' का अर्थ सदैव 'यम की पत्नी' ही होगा। उनके इस लेख से पता लगता है कि वे लौकिक संस्कृत से अत्यन्त अनभिज्ञ हैं। आप जरा शब्दकल्पद्रुम वाचस्पत्य तथा अमरकोश आदि कोषों को देखिए।

(१)वहां 'यमुना' नदी के 'यमभगिनी' और 'यमी' ये दो नाम और दिये हुए हैं। एवं 'यम' का पर्यायवाची 'यमुनाभ्राता' बतलाया गया है। हमें इस कल्पना में जाने की कोई आवश्यकता नहीं कि 'यम' यमुना नदी का भाई क्यों है? परन्तु यह स्पष्ट है 'यम' यमुनाभ्राता है और 'यमुना' के समानार्थक शब्द यमभगिनी और 'यमी' भी हैं। अतः निस्सन्देह यम यमी भाई बहिन हुए।

(२)और देखिए, भाईदूज नामक प्रसिद्ध त्योहार जो दीपावली के तीसरे दिन प्रायः संपूर्ण भारत में मनाया जाता है उसका संस्कृतनाम 'भ्रातृ द्वितीया' है। 'भ्रातृद्वितीया' का पर्यायवाची नाम 'यमद्वितीया' कोषों में उल्लिखित है। इससे भी यही परिणाम निकलता है कि यम यमी भाई बहिन ही है।

(३) परन्तु इसके विपरीत संस्कृत का अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण है कि 'यम' की पत्नी का नाम 'यमी' बिल्कुल नहीं। शब्दकल्पद्रुम में 'यमपत्नी' का अर्थ लिखा है 'यमस्य भार्या यमस्य द्वे भार्ये धूमोर्णा विजयेति जटाधरः'।

यदि 'यमी' यमपत्नी होती तो अवश्यमेव 'यमी' का अर्थ यमपत्नी करता। अतः यह असंदिग्ध है कि यमी यम की पत्नी नहीं प्रत्युत भगिनी है। व्याकरण से चाहे 'यमी' का अर्थ 'यमपत्नी' भी हो सकता हो, परन्तु साहित्य की दृष्टि से वह सर्वथा अशुद्ध ही कहलायेगा।

(ग) व्याकरण प्रमाण – इतने स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए यम-भगिनी के अर्थ में प्रयुक्त 'यमी' की सिद्धि के लिये व्याकरण-प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यदि फिर भी आग्रह हो तो लीजिए व्याकरण -- प्रमाण भी दे देते हैं।

पं. चमूपति जी 'पुंयोगादाख्यायाम्'(पा.४.१.४८) सूत्र देकर सिद्ध करते हैं कि यमपत्नी अर्थ में ही 'यम' से 'ङीष्' प्रत्यय होगा अन्यथा नहीं। पण्डित जी! पुंयोगादाख्यायाम् का अर्थ तो यह है कि जो पुल्लिङ्ग नाम पुरुष के योग से स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त हैं उनसे 'ङीष्' हो जाता है। यहां स्त्रीपुरुष का एकमात्र दम्पती भाव कहां से आगया स्त्रीपुरुष के संबन्ध पितापुत्री भाई

बहिन भी तो हैं ? वे कैसे छूट जावेंगे ? अत एव कौमुदीकार लिखते हैं "योगः संबन्धः। सचेह दम्पतिभाव एवेति नाग्रहः। संकोचे मानाभावात्" अर्थात् योग कहते हैं संबन्ध को। और वह यहां दम्पतिभाव ही है-ऐसा आग्रह नहीं, क्योंकि स्त्रीपुरुष के संबन्ध को संकुचित अर्थ में ग्रहण करने के लिये कोई प्रमाण नहीं। आगे कौमुदीकार उदाहरण देता है कि केकय राजा की पुत्री का नाम 'केकयी' इसी सूत्र से निष्पन्न होता है। पण्डित जी के व्याकरणानुसार तो 'केकयी' केकय की पत्नी बन जावेगी! भगवन्! ऐसा अनर्थ न कीजिए। पुत्री को पुत्री और बहिन को बहिन ही रहने दीजिए उन्हें पिता या भाई की पत्नी न बनाइए!

इस प्रकार आपने देख लिया कि अभी तक संस्कृत वाङ्मय में यमयमी का यदि कोई संबन्ध स्थापित है तो एकमात्र भाई बहिन का ही है अन्य कोई नहीं।

(२) 'यम सहजात जोड़ा और असहजात जोड़ा इन दोनों अर्थों मे प्रयुक्त होता है। यहां सहजात जोड़े के अर्थ में प्रयुक्त है। एवं, यम और यमी सगोत्र भाई बहिन है सगे नहीं।

संपूर्ण सूक्त में ऐसा कोई शब्द नहीं जिससे सगे भाई बहिनों की कल्पना की जा सके। पंचम मंत्र के 'गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कः' वचन को देख कर कई लोग भ्रम में पड जाते हैं कि यहां तो स्पष्टतया सगेभाई बहिन ही अभिप्रेत हैं। यह उन की भूल है। यहां पर 'नौ' शब्द द्वितीयान्त नहीं प्रत्युत षष्ठ्यन्त है। एवं, इसका अर्थ यह होगा कि 'उत्पादक परमेश्वर ने हमारे कई भाई बहिनों को गर्भ में दम्पती बनाया है।'

(३) गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। १०.८.५० ३६

विश्ववेश देवरम् मर्यं न योषा। ऋ० १०.४०.२

उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकम्। ऋ० १०.१८.८

इत्यादि मंत्रों में विवाह और नियोग का सामान्यतया विधान है। परन्तु यमयमी सूक्त सगोत्र-विवाह और सगोत्र-नियोग का निषेधक है।

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥
मनु ३. ५॥

अर्थात्, जो स्त्री माता की छः पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो, वह द्विजों के लिये (दारकर्मणि) विवाहार्थ और (मैथुने) नियोग में गर्भधारणार्थ प्रशस्त है।

उपर्युक्त मनुवचन का मूल यही यमयमी-सूक्त है। इसी वेदाज्ञा को सामने रखते हुए ऋषि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के नियोग प्रकरण में लिखते हैं-"परन्तु माता, गुरुपत्नी, भगिनि, कन्या, पुत्रवधू आदि के साथ नियोग करने का सर्वथा निषेध है।" अत एव पुत्री का नाम 'दुहिता' है क्योंकि वह 'दूरे हिता' होती है। विवाह या नियोग के संबन्ध के लिये सगोत्रों से बाहर दूर निहित होती है।

सपिण्ड, सगोत्र, सनाभि, सज्ञाति-ये सब शब्द शब्दकल्पद्रुम ने समानार्थक बतलाये हैं। इस अर्थ में 'जामि' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है जिसकी सिद्धि हम अभी करेंगे।

चतुर्थ मन्त्र में आये 'गन्धर्वो अप्सु अप्या च योषा' 'सा नौ नाभिः' 'परमं जामि तन्नौ' और १० वें मंत्र का 'जामयः' शब्द इसी सगोत्रता का द्योतक है।

(४) ये यम और यमी पूर्ण संयमी हैं। मन्त्र-व्याख्या के देखने से आपको स्पष्टतया ज्ञात हो

जावेगा कि यमी के संयम में भी कोई सन्देह स्थल नहीं। 'पितुर्नपातमादधीत वेधा' 'एकस्य चिच्चजसं मर्त्यस्य' 'विवृहेव रथ्येव चक्रा' आदि में यमी उस उद्देश्य का ही निर्देश कर रही है।

'काममूता' में उसने स्पष्टतया ही कह दिया है कि मैं यथेष्ट प्रवृद्धचेता होती हुई इस संबन्ध के लिये कह रही हूं।

अन्त में अपने प्रस्ताव के न माने जाने पर दुःखी नहीं होती प्रत्युत 'बतो बतासि' कहती हुई बडी प्रसन्नता प्रकट कर रही है। यमी का प्रस्ताव अशिष्ट है, भाव पापपूर्ण नहीं प्रत्युत पवित्र है।

सगोत्र वालों में दम्पती संबन्ध मानुषी कल्पना के भी बाहर है—यह बात ठीक नहीं। इस पाप-कर्म को अनेक जातियें और व्यक्तियें करती रही हैं और कर रहीं हैं। इस का निषेध करना आवश्यक ही था।

सगोत्र वालों में विवाह के लिये जिस किसी तरह भी बुद्धि और हृदय को अपील किया जा सकता है, किया गया। और फिर उसके ठीक ठीक उत्तर देकर निषेधात्मक परिणाम निकाला गया जिस से प्रस्तावकर्त्री यमी भी सहमत हो गई। यह है संवाद का रहस्य।

पं० चमूपती जी को भाई बहिन के पक्ष में 'बाजारू बातों' की गन्ध आने का एक मात्र कारण मंत्रों के यथार्थ अर्थों को न समझना ही है।

अब 'जामि' शब्द पर और विचार करना रह-गया है जिस के कारण सायणाचार्य तथा उस के अनुयायी विद्वान 'आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि' मंत्र के अर्थ का अनर्थ करते हैं।

'जामि' पर विस्तृत विवेचन लेखक ने वेदार्थदीपक निरुक्तभाष्य में किया है। यहां पर संक्षेप से ही लिखा जावेगा।

'आ घा ता गच्छान्' मंत्र की व्याख्या यास्काचार्य ने नि० ४ अ० ४६ श० में की है। वहां 'जामयः' 'अजामि का अर्थ करते हुए लिखते हैं— जाम्यतिरेकनाम बालिशस्य वा समानजातीयस्य वोपजनः" जामि अतिरेक का नाम है, मूर्ख का वाचक है और समानजातीय अर्थात सज्ञाति का बोधक है। 'जामि' समानजातीय अर्थ में 'जा' में 'मि' का आगम करने से सिद्ध होता है। एकस्मिन्कुले जायते इति जा, जा एव जामि-यह निर्वचन सज्ञाति अर्थ में होगा।

दुर्गाचार्य ने अपनी व्याख्या में 'असमानजातीयस्य ऐसा पदच्छेद किया है। पं० चमूपति जी ने भी बिना विचारे उसे ही मान लिया है। परन्तु यह उन की नितान्त भूल है। एक तो निघण्टु-व्याख्याकार देवराजयज्वा ने 'अतिरेकबालिशसमानजातीयानां वाचको जामिशब्दः' लिखते हुए 'समानजातीय' ही पाठ माना है। और दूसरा 'असमानजातीयस्य वा उपजनः' इस पाठ से कोई आशय ही नहीं निकलता। 'असमानजातीय' मानने से जामि का निर्वचन क्या होगा? और तीसरे, सायणादि भाष्यकारों ने 'समानजातीय' के आधार पर अनेक स्थलों पर जामि का अर्थ 'ज्ञाति' या 'बन्धु' किया है। अतः 'समानजातीयस्य' ऐसा पाठ मानना ही संगत है।

यास्काचार्य ने 'आ घा ता गच्छान्' की व्याख्या में 'जामी' का पहिला अर्थ 'अतिरेक' दिया है। अतः प्रस्तुत मंत्र में यह अर्थ अवश्य होना चाहिए।

अतिरेक के बारे में देखिए सायण क्या कहता है—

(क) जामि अतिरेकनाम, अतिरिक्तं अहितं प्रयोजनरहितम् । ऋ. ८.६.३.

(ख) जामि प्रवृद्धं सर्वमतिरिच्य वर्तमानम् । ऋ०=८.६१.४

(ग)अजामि दोषरहितम्।ऋ० ५.१९.४

(घ) जामि योग्यमनुरूपम् ।ऋ० १०.८.७

यहां तीसरा अर्थ पहिले अतिरेक के भाव को बतलाता है और चौथा अर्थ दूसरे अतिरेक का निर्देश करता है। 'अजामि' के 'दोषरहितम्' अर्थ में 'जामि'(बालिश)मूर्खता के भाव को भी प्रकट करता है। एवं, आप देखिये कि 'जामि' के यास्ककृत तीनों अर्थ किस प्रकार 'आ घा ता गच्छान्' मंत्रमें सुसंगत होते हैं। अतएव 'यत्र जामयः कृण्वन् अजामि' का अर्थ मनें यह किया है-जहां कि सगोत्र (सजाति) स्त्री पुरुष महत्वयुक्त योग्य अनुरूप कार्य्य करेंगे ।

वाचक वृन्द! यद्यपि पं० चमूपति जी लिखते हैं कि ब्राह्मणग्रंथ, यास्काचार्य, ऋषि दयानन्द, और व्याकरण-सब उन के मत का पोषण करते हैं, परन्तु यहां तक के मेरे लेख से आप को भली भांति विदित होगया होगा कि इन में से कोई भी इनके मत का पोषक नहीं प्रत्युत सब के सब नितान्त विरुद्ध हैं। परन्तु मेरे पक्ष में ब्राह्मण, यास्काचार्य ऋषि दयानन्द, व्याकरण, सायणाचार्य, बृहद्देवता आदि सभी हैं। इन सब का समन्वय सिद्धान्त रूप से मेरे पक्ष में ही हो रहा है।

"सुभगे" शब्दका प्रयोग।

"वैदिक मेगजिन" के श्रावण के अंकमें श्री. पं. चमूपतिजीने द्वितीय वार यमयमीसूक्तके विषयमें लिखा है और सिद्ध करने का यत्न किया है कि यमयमी परस्पर भाई बहिन नहीं थीं परंतु विवाहित पतिपत्नी थी। यह सिद्ध करने के लिये उन्होंने जो विलक्षण प्रमाण दिये हैं, उनमें एक "सुभगे" शब्द का प्रयोग भी एक है। पं०जी लिखते हैं कि—

"न तेभ्राता सुभगे वष्टयेतत्। ऋ. १०।१०।१२में सुभगे शब्दका प्रयोग सिद्ध करता है कि यमयमी विवाहित थीं। यदि भाई बहिन होती तो इस शब्दका प्रयोग होना संभव ही नहीं था।"

उक्त लेखमें पं० चमूपतिजिका कहना है कि "सुभगे" शब्दका प्रयोग सिद्ध करता है कि यम और यमी विवाहित थी। यदि विवाहित न होती तो यम कदापि यमीको "सुभगे" नामसे संबोधित न करता।

पं, चमूपति जीके विचार से "सु-भगे" शब्दका अर्थ केवल "उत्तम योनि वाली स्त्री" ही है। परंतु यह गलत है और केवल असत्य है। केवल इसी

अश्लील अर्थ से "सुभगे" शब्दका प्रयोग किसी भी संस्कृत सभ्यग्रंथमें नहीं है।

संस्कृत वाङ्मयमें "सुभगा" शब्दका अर्थ यह है ही नहीं जो कि पं. चमूपतिजीने माना है।

जो हम कह रहे हैं उसको सिद्ध करनेके लिये बडे प्रमाण देनेकी भी आवश्यकता नहीं यही, महाभारतका श्लोक देखिये–

तां तथा ब्रुवतीं श्रुत्वा भृशं लज्जान्वितोऽर्जुनः। उवाच कर्णौ हस्ताभ्यां पिधाय त्रिदशोपमः ॥३६॥ दुःश्रुतं मेऽस्तु सुभगे यन्मां वदसि भामिनि। गुरुदारैः समाना मे निश्चयेन वरानने ॥३७॥ यथा कुंती महाभागा यथेंद्राणी शची मम। तथा त्वमपि कल्याणी नाऽत्र कार्या विचारणा ॥३८॥ महाभारत. वन. अ० ४६

अर्जुन ने उनके ऐसे वचन सुनकर लज्जामें भरकर अपने हाथोंसे कानोंको बंदकर लिया, और ऐसा कहने लगे;हे सुभगे!हे भामिनी!जो तुम कह रही हो, सो हमारे सुननेके योग्य नहीं है, क्यों कि तुम निश्चय करके हमारी गुरुपत्नीके समान हो जैसे शची कुंती आदि हैं। तुम भी हमको वैसी ही हो हे कल्याणि ! इसमें कोई भी विचार और संदेह स्थान नहीं है।

यह अर्जुन का भाषण है। इसमें "सु-भगे" शब्द का प्रयोग है वह देखने योग्य है।

अर्जुन इंद्रके राज्यमें इंद्रसे अस्त्र विद्या सीखने के लिये गया था। वहां उर्वशी अप्सराका मन अर्जुन पर मोहित हुआ। एक रात्रीके समय उर्वशी अप्सरा अर्जुन के पास आगई और अपना मनोभाव उसने अर्जुनसे कहा। उर्वशीका भाषण श्रवण करके अर्जुन लज्जायुक्त होकर कानोंपर हाथरखकर बोला कि-

"हे सुभगे! हे देवी! तू हमारी माता जैसी हो। जैसे कुंती मेरे लिये है वैसी ही तू है"

इस कथनमें "सु- भगे" शब्दका प्रयोग माता के विषयमें किया है। अर्जुन उर्वशी को अपनी माता मानता हुआ, उनके साथ अपना मातृ संबंध मानकर "सुभगे" शब्दका प्रयोग करता है। इससे हि पता लग सकता है कि इस शब्द में जिस हीन भावको पं०चमूपति जी देखरहे हैं वह भाव इस शब्दमें है ही नहीं। क्यों कि यदि वह अश्लील भाव इस शब्दमें थोडाभी होता तो कदापि यह संभव नहीं कि इस शब्द का प्रयोग माताके विषयमें महाभारतमें किया जाता। "मातृदेवो भव" यह धर्मवाक्य आर्योंमें सब जानते ही हैं। माताके विषयमें सर्वदा निःसंदेह पवित्र अर्थवाले शब्द ही प्रयुक्त होते हैं। सदासे यही परंपरा आर्योंमें रूढ है। इसका विचार करनेसे स्पष्ट पता लगता है कि, यह शब्द पवित्र अर्थ वाला ही है। और उसमें वह अर्थ है हि नहीं, कि जो पं०चमूपति जीने माना है।

यमयमी सूक्त वेदका सूक्त है, इसमें स्त्री विषयक पवित्रता अधिक है, यह बात सब जानते ही है। यमयमीके संवाद रूप सूक्त में यम यमी के लिये "सु-भगे "इस शब्दका प्रयोग करता है। यह शब्द माताके लियेभी प्रयुक्त होता है, इतना पवित्र अर्थ इस शब्दका है, इसी लिये यमने अपनी बहिन के लिये इस शब्दका प्रयोग इस सूक्तमें किया है।

"सुभग अथवा सुभगा" शब्दका अर्थ "सुंदर मनोहर" इतनाही है। जो स्त्री अति सुंदर होती है। उसको "सुभगा" अर्थात "सुंदरी" कहते हैं। इसी लिये यह शब्द माता,बहिन या कोई सभ्य स्त्री इस विषयमें प्रयुक्त होता है।

जब यमयमी सूक्त के शब्दों पर इतना अत्याचार करने की आवश्यकता प्रतीत हुई है तब यहबात स्पष्ट है कि उनका माना हुआ तात्पर्य कितना भ्रम मूलक है।

महान् स्वप्न ।

[ले० श्रीयुत टी० एल० वास्वानी]

'स्वतंत्र भारत'–अभी तक हमारे लिये स्वप्न ही बना हुआ है। 'वैध आन्दोलन' अधिक आगे नहीं बढा सका । जब तक भारत एक परतन्त्र देश है तब तक उसका विधान ही क्या हो सकता ? राजनीति मे अडँगा नीति का स्थान अवश्य है परन्तु केवल अडङ्गा नीति से अधिक से अधिक कुछ और रियासतें कुछ और सुधार मिल सकते हैं, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। मैंने जहां तक समझा है स्वतन्त्रता की समस्या जनता की शक्ति और बल से ही हल हो सकती है। मेरा मतलब उस शक्ति से है जिससे रचना होती है, उस शक्ति से नहीं जिससे विनाश होता है। एक प्राचीन लैटिन कहावत मशहूर है कि जो रोग औषधि से अच्छा नहीं होता वह लोहे से अच्छा होता है और जो लोहे से अच्छा नहीं होता वह आग से अच्छा होता है। यह बिलकुल सत्य है कि पश्चिमी राष्ट्र सदियों से इसी लोहे और आग का विश्वास करते चले आरहे हैं। परन्तु फल क्या हुआ ? उन्होंने कौनसा रोग अच्छा कर लिया ? पिछले युद्ध में २० राष्ट्रों ने भाग लिया और दो करोड आदमी शामिल हुए परन्तु क्या फल मिला ? प्रत्येक राष्ट्र कमजोर हो गया। सरकार अब भी पाशविक और शारीरिक बल में विश्वास रखती है। मैं स्वतंत्रता को जिस रूप में देखता हूं, उसका घर जनता के दिल में बनाना पड़ेगा। सच्ची स्वतंत्रता वह हो ही नहीं सकती। जिससे जनता का कल्याण न हो। परन्तु तुम कहते हो कि स्वतंत्रता की रचना में देर लगेगी। हॉ जल्दी की रचना, सदा दृढ-रचना नहीं हुआ करती।

मैं विश्वास करता हूं कि एशिया में शीघ्र ही एक नवीन शक्ति का उद्भव होगा। भविष्य में चीन और जापान एक दूसरे का सहयोग करेंगे और गोरे राष्ट्र तथा एशियाई राष्ट्रों में एक जबर्दस्त संघर्षण होगा । मेरा हृदय यह स्वप्न देख रहा है कि उस समय संसार के भाग्य निर्णय में भारत में इस समय नवयुवकों के एक आदर्शवादी आन्दोलन की आवश्यकता है। हर प्रांत में यदि एक भी आदर्शवादी युवक हो तो वह बहुत काम कर सकता है। फिलिपाईन्स टापू के तरुण देशभक्त जोज रिजल को गोली से मार कर स्पेन सरकार ने एक प्रकार से अपनी हत्या कर डाली। रिजल ने जेल में बैठ कर जो ओजपूर्ण कविता लिखी वह फिलपाईन वालों के लिए राष्ट्रीय संगीत बन गई। उसकी यादगार न

देश में स्वतन्त्रता की अग्निको अभीतक प्रज्वलित रक्खा है। फिलिपाइन वालों को एक प्रकारसे विजय प्राप्त हो चुकी है। स्वतन्त्रता पर विश्वास रखने वाले नवयुवक राष्ट्र की भावनाओंको जगाने में बहुत कुछ कर सकते हैं। भारतको अब स्कीमों की ज्यादा जरूरत नहीं है, उसे जरूरत है आत्माओंकी-ऐसे नर और नारियोंकी जो जनता में कुछ न कुछ नई भावना उत्पन्न कर सकते हैं, क्यों कि जनताके हृदयमें आग बुझी नहीं है, और न वह बुझ सकती है।

नवीन ग्रंथ।

१ प्राचीन भगवद्गीता—(ले०—श्री. मंगलानंद पुरी अतर सूया, इलाहाबाद मू. ॥)

श्रीमद्भगवद्गीताके ७०० श्लोक हैं उनमें केवल ७० श्लोकही मूल और प्राचीन हैं, यह इस ग्रंथकार का कथन है। इस पुस्तकमें ७० श्लोकोंका अर्थ और उनकी संगति लिखी है।

सप्तश्लोकी गीता-(ले० श्री मंगलानंद पुरी, मू.।)

इस पुस्तकमें गीताके सात श्लोकोंका तात्पर्य बताया है। इसी पुस्तकमें गीताका एक श्लोक भी दिया है। अर्थात् (१) एक श्लोकी गीता, (२) सात श्लोकों की गीता (३) ७० सत्तर श्लोकों की गीता और (४) सातसौ श्लोकोंकी गीता, ये भगवद्गीताके चार ग्रंथ हमारे सन्मुख आगये हैं। इनमें ग्रंथकारका कथन है सत्तर श्लोकोंकी गीता ही प्राचीन है। इसका कारण क्या? ग्रंथकार कोई प्रबल प्रमाण नहीं दे सके। वास्तवमें जितनी टीकाएं हुई है उन सबमें ७०० श्लोक पाये जाते हैं इसलिये सत्तर श्लोकोकी भगवद्गीता प्राचीन और सातसौ श्लोकोंकी अर्वाचीन कहना प्रमाणयुक्त प्रतीत नहीं होता। किसी भी स्थान पर सातसौ से कम श्लोकोंकी भगवद्गीताका उल्लेख भी नहीं है। इस कारण प्राचीन भगवद्गीताके लेखक के साथ हमारी सहानुभूति नहीं है। वाली द्वीपमें प्राप्त टूटे फुटे पुस्तकों के आधार पर अपने पुस्तकोको तोडना योग्य नहीं है।

३ वैदिक प्रार्थना—(ले.-श्री. अमरनाथजी औदीच्य, शंकर सदन, देहरादून) विना मूल्य।

ऋग्वेदके अंतिम सूक्त का अर्थ इस पुस्तक में दिया है। ऐसे पुस्तक में दवाओंके विज्ञापन न दिये होते तो अधिक अच्छा होता। वेद मंत्रोंको विज्ञापन के काममें लाना उचित नहीं है।

४ ब्रह्मयज्ञ—(ले. श्री. मंगलानंद पुरी, प्रकाशक पं. नरदेव शर्मा सरस्वतीन्द्र पुस्तकालय, काशी मू. ॥)

श्री स्वामिजी कृत संध्याका भाषानुवाद तथा आंग्रेजी अनुवाद.

५ Congress and The Dal = (लेखक— डा. एन. एस. हर्डीकर, दी वॉलंटीयर आफिस, हुबळी कर्नाटक। मू. ≈)

कांग्रेस के साथ स्वयंसेवक दलका संबंध क्या है इसका वर्णन इस अंग्रेजी पुस्तकमें है।

६ क्या इसलाम शांति दायक है ? = (ले.-श्री. मंगलानंद पुरी आर्य समाज कानपूर । मू-॥)

पुस्तक के नामसे ही पता लग सकता है कि अंदर क्या है। दूसरोंके दोष देखनेकी अपेक्षा यदि हम दूसरोंसे उत्तम गुण सीखनेका यत्न करेंगे तो अधिक उन्नतिका संभव है।

(७) संजीवन = (संपादक श्री. चतुरसेन शास्त्री प्रकाशक – पा. भद्रसेन शर्मा चांदनी चौक देहली वा. मू. ४)

स्वास्थ्य संबंधी मासिक पत्र। स्वास्थ्य साधनके लेख इस में पढने योग्य हैं।

(८) शिक्षामृत — (सं. श्री. गोपालदास रेजा नरसिंगपुर । वा. मू. ३)

शिक्षा विषयपर इसमें उत्तम लेख आते हैं ।

आसन।

(लेखक– श्री. पं कवि. अत्रिदेव गुप्तजी विद्यालंकार)

" कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः।
गर्भः संजायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ॥"

शरीर --

यह हमारा शरीर शुक्र और आर्तव के संयोग के कारण और चेतना धातु के मेलसे उत्पन्न हुआ है। इस उत्पत्ति में चेतना धातुके अतिरिक्त चौबीस तत्व मूलप्रकृति, महत, अहङ्कार पंचतन्मात्रा और ११ इन्द्रिय, पांच भूत यह १६ विकृति भी सहायक है। इसमें वात अंग प्रत्यंगका विभाग करती है। तेज उन को पकाता है अर्थात् एक रूपसे अन्य रूप में बदलता है। जल उनको गीला रखता है। पृथ्वी इनको संहति और मूर्तिरूपमें लाती है। और आकाश ऊपर-तिरछी-और नीचेकी ओर बढाता है।

दोष—

न ऋते कफादस्ति न पित्तान्न च मारुतात्।
शोणितादपि वा नित्यम्--

यद्यपि यह शरीर शुक्र शोणित संयोगसे बना है तथापि-वात पित्त कफ यह तीन ही शरीर की प्रकृति और विकृति को बनाने वाले हैं-चूं कि शरीर की विकृति अवस्थामें (चाहे अवस्था शरीर में उत्पन्न हो चाहे बाह्य कारण चोट आदीसे हो) इनमें ही विकार आता है अर्थात् यही दूषित होते हैं इस लिये इन्हें दोष कहते हैं। यद्यपि इनका स्थानका वर्णन संक्षेप से है परन्तु मुख्यतः यह सब देह में व्याप्त है।

धातु--

''एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधाति यन्नृणाम्।
रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥

आहार के सम्यक् पचने के उपरान्त रसका निर्माण होता है, और रससे रक्त, रक्तसे मांस-मेद-मज्जा-अस्थि-शुक्र यह सात धातु बनते हैं चूं कि यह शरीर को धारण करते हैं इस लिये यह धातु है। त्रिदोष वात-पित्त-कफ भी इनमें व्याप्त होकर रहते हैं।

यथा—

वात अस्थि	Nervous system Respiratory system Generatory system
पित्त रस रक्त	Lymph system Circulatary system Digestive system Urinary system
कफ मांस-मेदा मज्जा-शुक्र	Muscles organs जैसे यकृत आदि

वात	पित्त	कफ
अस्थि	रस-रक्त	मांस-मेदा (Fat)
	1 Lymh-System	मज्जा Bone Marrow
	रक्तसंस्थान	शुक्र --
वातसंस्थान	2Cirulatary system	मांस पेशी muscles
श्वास संस्थान	3 Digestive system (पाचनसंस्थान)	organs जैसे Liver
	4 Urinary system	यकृत
	(मूत्रसंस्थान)	प्लीहा--
		मस्तिष्क—

इन में से उत्पादक संस्थान त्रिदोष सम्मिलित है-उसमें कफ वात पित्त तीनों समान हैं।

प्रधानता-

इन सब धातु और दोषों में प्रधानता वात की अर्थात् Nervous system की है-सब अवयव-हृदय-आमाशय-यकृत् आंत्र आदि और सब दोनों प्रकार की पेशियां (Involantary & Volantary) तथा सब system वात के ही आधीन है-उसके विना कुछ भी गति नहीं हो सकती।

"पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्।"

अर्थात् पित्त स्वयं लंगडा है और कफ स्वयं लंगडा है-वह वायु की गति से ही चलते फिरते हैं जिस प्रकार बादल को वायु इधर उधर उडाती है उसी प्रकार वात भी इन को ले जाता है।

२ वात ही सारे शरीर को धारण करता है जैसे कि अत्रिऋषिने कहा है---

"वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः"

अत्रिसंहिता।

वात ही इस शरीर को धारण करता है —

३ "कालेन महतात्ध्यानां यत्नात्सिध्यन्ति वा न वा" निदान

शरीरका प्रत्येक रोग चाहे वह आगन्तुज हो या निजोत्पन्न हो अपना प्रभाव Nervous system वातसंस्थान पर अवश्य थोडा बहुत डालता है — प्रत्येक यदि चिकित्सा न किया जाये तो वातसंस्थानिक रोग बन जाता है जिससे कि वह कष्टसाध्य या असाध्य हो जाता है। जैसाकि-उपदंश।

४-शरीर को स्थिर रखनेमें तीन बातें है, उन तीनोंका सम्बन्ध वातसंस्थान सेही अधिक है।

"त्रयो विष्टम्भाः शरीरस्य आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति"

आत्रेय

आहार—

भोजन को पचानेमें जीर्ण करनेमें रस के साथ मांस पेशियोंका काम करना आवश्यक है, उनको Vages Nerve मुख्यतः नियमित करती है।

स्वप्न— नींद आनेका मुख्यतः कारण अंगों का ढीली या सुस्त हो जाना है तामसिक गुण को प्रादुर्भाव होना निद्रा है—

'तमोऽभिभूते तस्मिंस्तु निन्द्रा प्रविशति देहिनाम्' सुश्रुत

हृदय में तमोगुण का ज्यादा होजाना निंद्राका कारण है हृदय को Nervous system Control करता है।

ब्रह्मचर्य---

ब्रह्मचर्यका वातसंस्थान के साथ कितना सम्बन्ध है इस बातको एक चिकित्सक भली प्रकारसे जानता है संक्षेपसे कुछ यहां लिखता हूं।

स्वप्न दोष (Night Emission) की चिकित्सा में मुख्य यह है —

१-गाढी नींद लानेवाली औषधियोंका देना Hypnotic जैसा Bromides, Belladonna

२ रात को स्नान करके सोना जिससे कि कामशक्ति उद्दीप्त न हो ढीली रहे।

३ कमर के बल उत्तान न सोना चूं कि पीछे शुक्रवाही नसों को नियमित करनेवाली नसें है।

४ भारी पेट- मूत्र न करके सोना—कब्ज और पानी पीके सोना इत्यादि बातोंमें भी उन शुक्रवाहिनीयों पर दबाव हो जाता है।

५ मानसिक वृत्ति को बदलना इस लिये गाढी नींद आवश्यक है शुक्रच्युति में वात की ही प्रधानता है चूं कि—

"वायुर्मेहनमार्गेण पातयत्यंगनागमे"

यह सब आपने देखा कि वातसंस्थान या Nervous system के साथ वातका कितना संबन्ध है।

६ प्रत्येक जहर का प्रभाव सबसे प्रथम वातसंस्थान पर ही पडता है।

७ सुश्रुतने तीन प्रकृति वालों के गुणों को बताते समय वातवालों को तामसिक, पित्तवालों को राजसिक, और कफवालों को सात्विक कहा है।

इस में वातसंस्थान में प्रभाव होने से बुद्धि तामसिक हो जाती है जैसे कि कामसूत्रमें वात्स्यायनने बताया है कि "नयनप्रीति" आदि दशलक्षणों से स्मृतिभ्रंश हो जाता है- "

"स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।"
गीता

वातसंस्थानपर प्रभाव होनेसे बुद्धि और स्मृति का नाश हो जाना अवश्यंभावी है।

इन उपरोक्त सब बातोंसे स्पष्ट है कि शरीर की स्थिरता में वातसंस्थान कोही सब से प्रधान माना है। इस लिये संक्षेपसे उसके सम्बन्धमें लिखता हूं।

वातसंस्थान के मुख्य भाग तीन है—

१-पृष्ठवंश— Spinal Cord

२-मन्या (घाटा) Modulla

३ मस्तिष्क Brain

यह २९ मोहरें (Vertebræ) से मिलकर बनी है। जिसमें ऊपरके मोहरे छोटे हैं और नीचे-के मोहरे उत्तरोत्तर दृढ और मोटे होते चले गये हैं। इनमें से धमनी-शिरा-नसों को जानेके लिये बहुतसे सुराक बने हुवे हैं।

ध्यान देने योग्य बातें।

१ इसमें से गुजरते समय वहुतसे नसें Nerves अपना रास्ता बदल लेती हैं अर्थात् दाक्षिण ओर के तन्तु वाम ओर और वामके दाक्षिण होकर गुजरते हैं।

२ कटिके (Lumber) मोहरे सब से दृढ और मजबूत हैं जिस से कि सारे शरीर का भार बैठते समय उन पर से पडे, न कि पीठ के मोहरों पर।

३ बहुतसे स्थानों के केन्द्र जैसे शुक्र आदिके वह इसीमें है।

४ हमारा पृष्ठवंश स्वभावतः चार स्थान से वक्र है उस को उन्हीं स्थानों से वक्र रखना चाहिये न कि अन्य स्थानों से जिस से कि सारे शरीर का भार एक मकान की नींव की भांति सीधा मोहरों पर ही पडे।

सूचना—जो लोग झुक कर बैठते हैं उनकी आयु छोटी होती है। जिसका मेरुदण्ड जितना सीधा स्वाभाविक रीति से होगा उसकी नसों पर बिल्कुल जोर नहीं पडेगा और नहीं किसी प्रकार की बाधा ही पड़ेगी परन्तु जो झुककर बैठते हों उनमें छातीपर जोर पडता है और पीठका भाग बाहर की ओर निकल आता है इसके साथ कटिके ऊपर Sacrun भागके करीब जिस का यह भाग जितना अन्दर को गया होगा अर्थात् दोनों ओरकी मांस पेशीयाँ जितनी ज्यादा मोटी और दृढ होंगी और मोहरों का स्पर्श जितना अन्दर को गहरा होगा वह उतना नीरोग और दीर्घायु होगा।

युक्ति—

१ चूंकि निर्बल आदमी प्रायः चिकित्सक के पास कमरमे दर्द होने की शिकायत करते है। वह कहते है कि बैठकर खडा होने में दर्द होती है।

२ यह सर्व सम्मत है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में कामवासना आठगुनी है, इसलिये उनके अन्दर कमजोरीके लक्षणों का प्रादुर्भाव शीघ्र हो जाता है। उनके कमर दर्द ज्यादा होती है और हिस्टिरिया आदि भी वातसस्थान के रोग इनमें ही अधिक होते है।

३ वीर्यच्युति के बाद कमर में दर्दका अनुभव होता है और आर्तवकालमे स्त्रियोंमें कटिशूल होना एक प्रधान लक्षण है।

४ कमरमें दर्दका होना एक कमजोरी की निशानी है यह दुनियामें मशहूर बात है। मेरुदण्डको एक कुल्याकी भांति गहरा और सीधा रखना चाहिये। इसलिये ढासने की अपेक्षा सीधा पीठ के बल ही बैठना उत्तम है।

मन्या—

इसका विशेष वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं परन्तु मन्या पर यदि दोनों हाथों की उंगलि यों एक दूसरे में फंसा कर फिर हम मन्या का सीधे सीधे पैरोंपर खडे दबायें तो चेहरा लाल होजाता है और शरीर में एक विशेष स्फूर्ति अनुभव होता है। जिसका कारण—

स्नायु और नसो पर दबाव है चूंकि मेरूवंश के बाद नसें इसमें से होती ही मस्तिष्क में जाती हैं—

मस्तिष्क—

यह सब मज्जासंस्थान का केन्द्र है—सब प्रकार के ज्ञान और सब प्रकारकी आज्ञायें इससे ही उत्पन्न होती है, इस लिये इसका ठीक रखना आवश्यक है-मेरूदण्ड तो इसके लिये रास्ता है, यदि वहठीक है तो मस्तिष्क भी ठीक है चूंकि ज्ञान ठीक आयेगा यदि वह खराब होगया तो यह भी खराब हो जायेगा।

सूचना—शिरको सोते समय अपने शरीर की समान उंचाई पर अर्थात जितना कि गर्दन से कन्धे तक लम्बाई है इतनी उंचा ही रखकर सोना उत्तम है चूंकि अन्य अवस्थाओंमे मार्ग मे बाधा आजाती है।

इसी प्रकार जो झुककर भोजन खाते या पढते है उन्हें भी चाहिये कि शिरको ऊंचा रक्खें-छाति के रास्ते में बाधा डालने से लाभ के बदले हानि ही मिलती है।

किसी भी वस्तु को देर तक रखने के लिये आवश्यक है कि वह वस्तु अपनी लचक का बनाये रक्खे जिस वस्तुमें से लचक निकल गई वह वस्तु शीघ्र ही नष्ट हो जायेगी जैसे—

एक हरी फहदनी है वह सुखी लकडी की अपेक्षा स्थायी है चूंकि वह परिस्थिति के साथ अपने आप को बदल लेती है कि एक बडा भारी दुख

स्वाध्यायमंडल।

औंध (जि. सातारा)

का

" सप्तम वर्ष का कार्य "

(१ जनवरी १९२४ से ३१ दिसंबर १९२४ तक)

स्वाध्यायमंडल का उद्देश्य।

(१) वेदोंका स्वाध्याय करना और कराना।
(२) वैदिक शब्दों के मूल अर्थ की खोज करना।
(३) मूल वेदोंका अर्थ मूल वेदोंके आधारसे ही करना।
(४) लोगों में वैदिक धर्म की जागृति करना।
(५) वैदिक धर्म के सुबोध ग्रंथ प्रसिद्ध करना।
(६) वैदिक धर्मके साथ अन्य धर्मग्रंथोंकी तुलना करना।
(७) वैदिक धर्मके साथ अन्य मत ग्रंथोकी तुलना करना।
(८) वेदकी दृष्टिसे गाथाओंका अर्थ निश्चित करना।
(९) प्रचलित युरोपीयन मतकी समालोचना करना।
(१०) प्रतिपक्षियोंके आक्षेपोंका सप्रमाण उत्तर देना।

ये स्वाध्याय मंडल के उद्देश्य हैं और इसी दृष्टिसे आज सात वर्ष इस मंडलका कार्य चल रहा है जिसका वृत्त इस लेखद्वारा प्रसिद्ध किया जाता है। आशा है, कि वैदिक धर्मके प्रेमी इस कार्यको बढानेके लिये सहायता देंगे।

औंध (जि. सातारा) श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

१ जनवरी १९२५ स्वाध्याय मंडल।

स्वाध्यायमंडल।

"वेदका पढना पढाना, सुनना सुनाना, सब आर्योंका परम धर्म है।

(१) नाम — इस संस्थाका नाम 'स्वाध्याय मंडल' है।

(२) उद्देश –(पूर्व स्थानमें दिये है।)

(३) कार्यक्षेत्र – उक्त उद्देशोंके अनुसार वैदिक तत्त्वज्ञान और वैदिक धर्मके सुबोध ग्रंथ प्रचलित अनेक भाषाओंमें प्रसिद्ध करना तथा वेदके पठन पाठनके लिये उचित सहायता और उत्तेजन देना।

(४) स्वाध्याय-मंडल का व्यय-पुस्तक प्रकाशन में लाभकी आशा न करनेके कारण, स्वाध्याय मंडलके व्यय आदिके लिये, उदाराचित 'दानी महाशयोंकी उदारता' परही विश्वास रखा है। आशा है कि धनिक लोक स्वयं द्रव्यकी सहायता करेंगे और दूसरे लोक सहायता करवायेंगे।

सहायक आदिके नियम।

(५) स्वा० मंडलके प्रतिपालक —जो धनिक पांच सौ रु० अथवा अधिक धनराशी स्वा० मंडलको दान देंगे, वे स्वाध्याय मंडलके 'प्रतिपालक' हो सकते है। इन को "स्वाध्याय मण्डल" के सब पुस्तक मिलेंगें।

(६) स्वाध्याय मंडलके पोषक —जो धनिक सौ रु० अथवा अधिक धनराशी स्वाध्याय मंडलको दान देंगे वे स्वाध्याय मंडल के 'पोषक' हो सकते है। इनको वह पुस्तक मिलेंगे कि जो इनकी रकम आने के पश्चात् मुद्रित होंगे।

(७) सहायक— जो यथाशक्ति द्रव्यकी सहायता करेंगे वे स्वाध्याय मंडलके 'सहायक' हो सकते है।

(८) स्थिर-सहायक— जो १००,५० अथवा २५ रु. स्वा० मंडलके पास अनामत रखेंगे वे 'स्थिर सहायक, होंगे। (दो वर्षके पश्चात् जिस समय चाहे उस समय इनका धन वापस हो सकता है) इनको क्रमशः १०, ४॥ और २ रु. के पुस्तक डाकव्यय समेत प्रतिवर्ष भेट किये जायंगे।

(९) मासिक-सहायक—जो प्रतिमास यथाशक्ति सहायता करेंगे वे 'मासिक सहायक' होंगे।

सूचना –सहायक, स्थिर सहायक, तथा मासिक- सहायक आदिको उनकी रकम प्राप्त होनेके अनुसार स्वा० मं० के पुस्तक मिलेंगे।

सबको उचित है कि वे स्वा० मंडलके पुस्तक स्वयं पठन करें, इन पुस्तकोंका प्रचार करनेमें सहायता करें, और उक्त प्रकारके

पाठक, पोषक, सहायक आदिकोंकी संख्या बढानेमें सहायता दें। क्यो कि आर्थिक सहायताके विना स्वाध्याय 'मंडल' का कार्य चल नहीं सकता।

(१०) वार्षिक वृत्त — स्वाध्याय मंडलका वार्षिक वृत्त प्रतिवर्ष प्रसिद्ध होगा जिसमें स्वाध्याय मंडलके सब कार्यका विवरण आदि प्रसिद्ध होगा।

(११) प्राप्ति पत्र—प्रत्येक दानका प्राप्ति-पत्र स्वाध्याय मंडलसे दानी महाशयके पास पहुंचेगा।तथा वार्षिक-वृत्तमें उसका उल्लेख रहेगा।

पुस्तक विक्रीके नियम।

(१२) उधार पुस्तक देना बंद किया है। सब पुस्तक वी . पी . द्वारा ही भेजे जाते है अथवा पेशगी मूल्य आनेपर भेजे जाते है।

(१३) कमिशन—व्यौपारियोंके लिये निम्नप्रकार कमिशन दिया जाता है।

१०० रु.	पुस्तकोंपर	२०	"	फी सैंकडा
५०	"	"	१५	"	"
२५	"	"	१०	"	"
१०	"	"	५	"	"

(१४) बदलेमें पुस्तक नहीं दिये जाते, क्यों कि उनकी बिक्री करनेका साधन यहां नहीं है।

(१५) पेशगी मूल्य भेजने से लाभ- जो लोग ५) पांच अथवा अधिक रु. की पुस्तकें, पुस्तकोंका सब मूल्य पेशगी म. आ. द्वारा भेजकर मंगवायेंगे, उनको उक्त कमिशनके अतिरिक्त पांच फी सैंकडा कमिशन अधिक मिलेगा और डाक व्यय माफ होगा। वी . पी . से पुस्तके मंगवाने वालोंको यह लाभ नहीं होगा। पुस्तकें मंगवाने के समय ग्राहक इस बातका विचार अवश्य करें।

उक्त नियमोंमें परिवर्तन करनेका अधिकार स्थानिक कार्यकारी मंडलको होगा। परंतु, स्वा० मंडलकी उन्नतिके लिये सब सभासद अपनी सूचनाएं मंडलके पास भेज सकते हैं, जिनका निःपक्षपातसे विचार कर के योग्य सूचनाओंका अवश्य स्वीकार किया जायगा।

स्वाध्याय मंडल,
औंध, जि .सातारा
१जनवरी १९२५

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

[स्वाध्याय मंडल द्वारा प्रकाशित]

वैदिक धर्म ग्रंथ।

[१] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ।

बालक और बालिकाओंकी पाठशालाओंमें "धर्म-शिक्षा" की पढाईके लिये तथा घरोंमें बालबच्चोंकी धार्मिक पढाईके लिये ये ग्रंथ विशेष रीतिसे तैय्यार किये हैं।

(१) बालकोंकी धर्म-शिक्षा। प्रथम श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये। मू ˜)

(२) बालकों की धर्म-शिक्षा। द्वितीय भाग। द्वितीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये। मू. ≈) दो आने।

(३) वैदिक-पाठमाला। प्रथम पुस्तक। तृतीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये। मू. ≈)

अन्य श्रेणियोंके लिये पुस्तक तैय्यार हो रहे हैं।

[२] स्वयं-शिक्षक-माला।

(१) वेदका स्वयं-शिक्षक। प्रथम भाग। मू. १॥) डेढ रु.।

(२) वेदका स्वयं-शिक्षक। द्वितीय भाग। मू. १॥) डेढ रु.।

[३] आगम-निबंध-माला।

वेद अनंत विद्याओंका समुद्र है। इस वेद समुद्रका मंथन करनेसे अनेक 'ज्ञानरत्न' प्राप्त होते हैं, उन रत्नों की यह माला है।

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ।˜)

(२) मानवी आयुष्य। मू. ।)

(३) वैदिक सभ्यता। मू. ।।।)

(४) वैदिक चिकित्सा शास्त्र। मू. ।)

(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥)

(६) वैदिक सर्पविद्या। मू. ॥)

(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ॥)

(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥)

(९) शिवसंकल्पका विजय। मू. ॥।)

(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता। मू. ॥)

(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ॥)

(१२) वेदमें रोग जंतु शास्त्र। मू. ॥)

(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न। मू. ।≈)

(१४) वेदमें लोहेके कारखाने मू. ।-)

(१५) वेदमें कृषिविद्या। मू. ≈)

(१६) वैदिक जल विद्या। मू. ≈)

(१७) आत्मशक्तिका विकास। मू. ।˜)

(१८) वैदिक उपदेशमाला। मू. ॥)

इस मालाके अनेक निबंध लिखकर तैयार हैं, उनका क्रमशः मुद्रण हो रहा है।

[४] योग-साधन-माला।

"योग साधन" का अनुष्ठान करनेसे शारीरिक आरोग्य, इंद्रियोंकी स्वाधीनता, मानसिक शक्तिका उत्कर्ष, बुद्धिका विकास और आत्मिक बलकी प्राप्ति होना संभव है। इसलिये यह "योग-साधन" हरएक मनुष्यको करने योग्य है।

(१) संध्योपासना।— योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू० १॥) डेढ. रु०

(२) संध्याका अनुष्ठान। — (यह पुस्तक पूर्वोक्त "संध्योपासना" में समिलित है, इस लिये "संध्योपासना" लेनेवालोंको इसके लेनेकी आवश्यकता नहीं है) मू. ॥) आठ आने।

(३) वैदिक-प्राण-विद्या।— प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार "मनकी भावना" रखनी चाहिये, उसका वर्णन इस पुस्तकमें है। मू. १) एक रु.

(४) ब्रह्मचर्य।— इस पुस्तकमें "अथर्ववेदीय ब्रह्मचर्य सूक्त।" का विवरण है। ब्रह्मचर्य साधनके योगासन तथा वीर्यरक्षण के अनुभव सिद्ध उपाय इस पुस्तक में दिये है। यह पुस्तक "सचित्र" है। इसमें लिखे नियमोंके अनुसार आचरण करनेसे थोडेही दिनोंमें वीर्य स्थिर होनेका अनुभव निःसंदेह आता है। मू० १) एक रु.

(५) योग साधन की तैयारी।— जो सज्जन योगाभ्यामसे अपनी उन्नति करना चाहते हैं, उनको अपनी तैयारी किस प्रकार करनी चाहिये. इस विषयकी सब बातें इस पुस्तकमें लिखीं है। मू. १) एक रु.।

(६) आसन।— इसमे उपयोगी आसनोंका वर्णन चित्रोंके समेत दिया है। मू. २)

(७) सूर्यभेदन व्यायाम— (सचित्र) बलवर्धक योगके व्यायाम। मू. ।=)

"योग साधन" के अन्य पुस्तक छप रहे हैं। मुद्रित होनेही सूचना दी जायगी।

[५] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

"यजुर्वेद" ही कर्मवेद किंवा पुरुषार्थ वेद है, इसलिये यजुर्वेदका अध्ययन पुरुषार्थियों के लिये आवश्यक है। एक एक अध्याय का एक एक पुस्तक इस मालामें प्रसिद्ध होता है, इस समयतक निम्न ग्रंथ छप चुके है—

(१) यजुर्वेद अ. ३० की व्याख्या।— "नर-मेध" मनुष्योंकी उन्नति का सच्चा साधन। वैदिक नरमेध कितना उपयोगी है, इस विषयका ज्ञान इस पुस्तकके पढनेसे हो सकता है। मू. १) एक रुपया।

(२) यजुर्वेद अ. ३२ की व्याख्या "सर्व-मेध"। एक ईश्वर की उपासना।

य. अ. ३२ में एक ईश्वर की स्पष्ट कल्पना बताई है। मू. ॥)

(३) यजुर्वेद अ. ३६ की व्याख्या। 'शांति-करण'। सच्ची शांति का सच्चा उपाय। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जगत् में सच्ची शांति कैसी स्थापन की जा सकती है, इस के वैदिक उपाय इस पुस्तक में देखिये। मूल्य ॥)

[६] उपनिषद् ग्रंथ-माला।

तत्वज्ञान के भंडारमें "उपनिषद् ग्रंथ" अमूल्य ग्रंथ है। तत्त्वज्ञान की अंतिम सीमा इन ग्रंथोंमें पाठक अनुभव कर सकते हैं। जीवनके समय ये ग्रंथ उच्च तत्त्वज्ञान के द्वारा सदाचार की शिक्षा देते हैं, और मृत्युके समय अमृतमयी शांति प्रदान करते है। हरएक मनुष्य के लिये इन ग्रंथोंका पठन, मनन और अधिक विचार करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

(१) "ईश" उपनिषद्--- इस पुस्तक में ईश उपनिषद्की व्याख्या है। मू.॥।=)

(२) "केन" उपनिषद्– इस पुस्तकमें केन उपनिषद् का अर्थ और स्पष्टीकरण, अथर्ववेदीय केन सूक्त की व्याख्या और देवी भागवत की कथाकी संगति बता दी है। उमा, यक्ष आदि शब्दोंके अर्थ वैदिक प्रमाणों से निश्चित करके बताया है, कि उनका स्थान आध्यात्मिक भूमिका में कहां है और उसकी प्राप्तिका उपाय क्या है। मू. १।)

[७] देवता-परिचय-ग्रंथमाला।

"वैदिक देवता" ओंका सूक्ष्मज्ञान होनेके विना वेदका मनन होना असंभव है, इसलिये इस ग्रंथमाला में "देवताओंका परिचय" करानेका यत्न किया है। पुस्तकोंके नामोमेही पुस्तकोंके विषयका बोध हो सकता है—

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू.॥)
(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू.॥=)
(३) ३३ देवताओंका विचार मू.≡)
(४) देवता विचार । मू. ≡)
(५) वैदिक अग्नि विद्या। मू. १॥)

"अन्य" देवताओंका विचार और परिचय करानेवाले ग्रंथ तैयार हुए है, शीघ्रही मुद्रित होंगे।

[८] ब्राह्मण-बोध-माला।

वेदके गूढ तत्त्वोंका आविष्कार ब्राह्मण ग्रंथों में किया गया है।

(१) शत-पथ-बोधामृत । मू. ।)

वैदिक धर्म ।

सचित्र मासिक पत्र ।

वैदिक धर्म ।

वैदिक तत्त्वज्ञान का विचार और प्रचार करनेवाला यह एक उत्तम मासिक पत्र इस भारतभूमिमें है। इस मासिक पत्रमें **"वैदिक धर्मके ओजस्वी विचार, तेजस्वी मंत्र और स्फूर्तिदायक उपदेश"** प्रसिद्ध होते हैं। इस समय पंचम वर्ष समाप्त होकर षष्ठ वर्ष चल रहा है।

इसका वार्षिक मूल्य म. आ. से ३॥) साढे तीन रु. है। और वी. पी. से ४) है और विदेश के लिये ५) है

"विना मूल्य वैदिक धर्म"

उनको एक वर्ष मिल सकता है कि, जो पांच नये ग्राहकोंका चंदा १७॥) रु. **साढे सतरह इकट्ठा भेजें गे।** तीन नये ग्राहकोंका चंदा १०॥) **साढे दस रु. इकट्ठे भेजनेसे** आधे मूल्यमें वैदिक धर्म प्राप्त किया जा सकता है। आशा है कि इस सुविधासे ग्राहक लाभ उठावेंगे।

पुरुषार्थ

मराठी मासिक वैदिक धर्म ।

"वैदिक धर्म" का मराठी भाषामें रूपांतर गत वर्षके श्रावण माससे प्रारंभ हुआ है, व्यवहारकी सुविधाके लिये वैदिक धर्म के मराठीरूपान्तर का नाम **"पुरुषार्थ"** रखा गया है क्यों कि 'वैदिक धर्म' में चतुर्विध **पुरुषार्थ** करना ही मुख्य उद्देश्य है। और उसीका स्वरूप जैसा **'वैदिक धर्म"** द्वारा भाषामें प्रकाशित हो रहा है, उसी प्रकार मराठी भाषामें **"पुरुषार्थ"** मासिक द्वारा प्रसिद्ध होरहा है। मासिक की कर्तव्य नीति वैसीही है जैसी वैदिक धर्मकी है।

प्रचारके उद्देश्यसे **"पुरुषार्थ'** मासिक का मूल्य २॥) अढाई रु. है और आकार आदि वैदिक धर्म जैसा ही है। अर्थात् इस मासिक में घाटेकी संभावना अधिक है, इस लिये धनिक लोगोंसे प्रार्थना है, कि वे इस वैदिक धर्मके प्रचार के कार्यमें उचित सहायता प्रदान करें।

स्वाध्याय मंडल का कार्य जो पाठकोंके सन्मुख रखा गया है वह बहुतही थोडा है और जो कार्य भविष्यमें करना हैं वह बहुत ही बडा है। यजुर्वेदके अध्यायोंका मुद्रण यह एक ही कार्य पचीस तीस हजार रु. के व्ययका है। इस के अतिरिक्त वेदका समन्वय, अथर्ववेद स्वाध्याय आदि बहुत ही है। जितने ग्रंथ लिखे गये हैं और मुद्रण के लिये तैयार हैं, उनमें से तीसरा हिस्सा भी मुद्रित नहीं हुए हैं। इसका कारण पाठक जानते ही है। द्रव्य के विना इनका मुद्रण होना असंभव है। यदि धनिक लोग इस कार्यकी उचित सहायता करेंगे तो यजुर्वेद के अध्यायोंका मुद्रण अतिशीघ्र हो सकता है। तथा अथर्ववेद के स्वाध्याय का भी क्रमशः मुद्रण हो सकता है।

मुद्रण की कठिनता।

मुंबई में मुद्रण–व्यय बहुत होता है, यह अनुभव गत पांच वर्षोंमें आ रहाथा। परंतु कुछ उपाय सूझता नहीं था। मुंबईका मुद्रण निःसंदेह अच्छा होता है, परंतु मुंबईका मुद्रणव्यय भुगतनेका सामर्थ्य स्वाध्याय मंडलमें प्रतिदिन कम हो रहा था। इसलिये उपाय करना आवश्यक प्रतीत हुआ। यह उपाय अपना मुद्रणालय शुरू करना। परंतु मुद्रणालय अपना बनाना कोई कम व्ययका कार्य नहीं है, इस लिये वह विचार बहुत दिन मनका मनही में रहा। परंतु गत वर्ष जब यजुर्वेद की शीघ्र छपाई करनेका विचार प्रस्तुत हुआ तो अपना मुद्रणालय करनेके विना दूसरा कोई मार्ग ही दिखाई नहीं दिया और औंध बैंकसे कर्जा करके मुद्रणालय शुरू किया गया।

भारत मुद्रणालय।

इस प्रकार स्वाध्यायमंडल के भारत मुद्रणालय का प्रारंभ हुआ है। अपना मुद्रणालय होनेसे वैदिक धर्मका आकार बढाने में सुविधा हुई है पहिले छोटे आकारके २४ पृष्ठ थे, उसके स्थानपर दुगणे आकार वाले अब ३२ पृष्ठ हुए है। मुंबई के मुद्रण के समय इस प्रकार पृष्ठ संख्या बढाना असंभव ही था। तात्पर्य वैदिक धर्म के ग्राहकोंका इस प्रकार यह पहिला लाभ हुआ है। अपना मुद्रणालय होनेसही **महाभारत** का मुद्रण होना संभव हुआ। यह पाठकोंका दूसरा लाभ है।

अन्य पुस्तकें भी इसी प्रकार जो यहां मुद्रित हो जायंगी वह सस्ती दी जायगी। इस प्रकार अपना मुद्रणालय होनेसे निःसंदेह प्रचार के कार्य में लाभ होगा।

स्वाध्याय के ग्रंथ

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध। मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।१)

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वमेध। "एक ईश्वरकी उपासना।" मू. ॥)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण। "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू.॥)

[२]देवता-परिचय ग्रंथ माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥=)

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=)

(३) ३३ देवताओंका विचार। मू.=)

(४) देवताविचार। मू. =)

(५) वैदिक अग्नि विद्या। मू. १॥)

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। मू. १॥)

(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥)

(३) वैदिक-प्राण-विद्या। मू. १)

(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।)

(५) योग साधन की तैयारी। मू. १)

(६) योग के आसन मू. २)

(७) सूर्यभेदन व्यायाम। मू. ।=)

[४] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथमभाग -)

(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीयभाग =)

(३) वैदिक पाठ माला। प्रथम पुस्तक ≡)

[५] स्वयं शिक्षक माला।

(१)वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। १॥)

(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग १॥)

[६] आगम-निबंध-माला।

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ।~)

(२) मानवी आयुष्य। मू. ।)

(३) वैदिक सभ्यता। मू. ॥।)

(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र। मू. ।)

(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू.॥)

(६) वैदिक सर्प-विद्या। मू. ॥)

(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू.॥)

(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥)

(९) शिव संकल्पका विजय। ॥।)

(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता। मू.॥)

(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ॥)

(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र। मू. ≡)

(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न। मू. =)

(१४) वेदमें लोहेके कारखाने। मू. ०।~)

(१५) वेदमें कृषिविद्या। मू. ≡)

(१६) वैदिक जलविद्या। मू. =)

(१७) आत्मशक्ति का विकास। मू. ।-)

[७] उपनिषद् ग्रंथ माला।

(१) ईश उपनिषद् की व्याख्या। ॥।=)

(२) केन उपनिषद् ,, ,, मू. १।)

[८] ब्राह्मण बोध माला।

(१) शतपथ बोधामृत। मू. ।)

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल;

औंध (जि. सातारा)

महाभारत।

महाभारत के पठन से लाभ।

(१) आर्यजातीका अत्यंत प्राचीन इतिहास विदित होगा।
(२) आर्यनीति शास्त्रका उत्तम बोध होगा।
(३) भारतीय राजनीति शास्त्रका ज्ञान होगा।
(४) आर्यों की समाजसंस्थाओंकी उत्क्रांतिका बोध होगा।
(५) आर्य राजशासन पद्धतिका पता लगेगा।
(६) ऋषियोंके धर्मवचनों का बोध होकर सनातन मानव धर्मका उत्तम ज्ञान होगा।
(७) चार वर्णों और चार आश्रमों की प्राचीन व्यवस्थाके स्वरूपका पता लग जायगा।
(८) कई आलंकारिक कथाओंके मूलका पता लग जायगा।
(९) वैदिकधर्मके प्राचीन आचार विचारोंका ज्ञान होगा और——
(१०) प्राचीन आर्य लोगों का सदाचार देखकर हमें आजकी स्थितिमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, इसका निश्चित ज्ञान होगा।

तात्पर्य हरएक अवस्थामें अपने प्राचीन पूर्वजोंके इतिहास का ज्ञान प्राप्त होनेसे अनन्त लाभ हो सकते हैं।

इसलिये आप स्वयं महाभारत का पाठ कीजिये, मनन कीजिये, और बोध प्राप्त कीजिये; तथा दूसरोंको वैसा करनेके लिये प्रेरणा कीजिये।

महाभारत।

[सुंदर चित्रोंके साथ]

आर्यों का प्राचीन इतिहासिक महाकाव्य।

स्वाध्याय मंडलका सप्तम वर्षका आयव्यय । (ता. १।१।२४ से ता. ३१।१२।२४ । तक)

परिशिष्ट संख्या १

आय.	रु.	आ.	व्यय.	रु.	आ.
गतवर्षकी रोकड ...	१०	९	मुद्रणालय—		
वैदिक धर्म चंदा ...	३८५२	१२	मकान— ९१०३–६		
महाभारत "	२८७०	१०	यंत्रादि— २४४–६		
पुरुषार्थ "	६२९	१४			
विज्ञापनसे प्राप्त ...	६६	१०	टाइप आदि ७७५–०		
पुस्तक विक्रीसे प्राप्त	५५४५	११	फर्निचर आदि ५१८–७	१०६४१	३
दान प्राप्त—			पुस्तकालय	१६९	११
प्रतिपालक वर्ग १२००–०					
पोषक " २७५–०			पुस्तक छपाई ...	९४६	८
मासिक सहायता १२०–०			कागज आदि ...	३४९९	१३
इतर " १६३–४	१७५८	४	वेतन	३६५४	१४
स्थिरग्राहक चंदा ...	६९	८	डाकव्यय	१४११	११
कर्जा—					
स्थिर सहायक २००-०			स्टेशनरी ...	७९३	"
स्टेट बैंक आदिसे १००००-०	१०२००		रेलवे व्यय ...	३१९	१५
			कमिशन ...	११९५	१२
			विज्ञापन	३८३	११
			मकान किराया	३००	"
			भोजनादिव्यय	७१६	८
			यंत्र दुरुस्ती ...	७६	"
			साधारण व्यय	६४	६
			स्टेटबैंक (कर्जा निवृत्ति)–	६००	"
			रोकड--		
			औंधमें २०२–६		
			म. बापुलालजी केपास		
			मुंबईमें — १०८— ८	३१०	१४
रु.	२५००३	१४	रु-	२५००३	१४

स्वाध्याय मंडल का हानि लाभ पत्रक सन १९२४ वर्षका (ता. १।१।२४ से ता. ३१।१२।२४ तक)

परिशिष्ट संख्या २

आय	रु.	आ.	व्यय	रु.	आ.
वैदिक धर्म चंदा—			**वर्षारंभमे पुस्तक संग्रह**	८०३७	८
गतवर्षका शेष १०००– ०			**पुस्तक छपाई**	४१६	८
इसवर्ष प्राप्त ३८५२–१२			**कागज आदिका व्यय**	५७२७	७
रु. ४८५२–१२			**प्रबंध व्यय**		
बाद पेशगी ९००– ०	३९५२	१२	वेतन ३६५४ –१४		
महाभारत चंदा—			डाकव्यय १४११ –११		
गतवर्षका २४०– ८			विज्ञापन ३८३ –११		
इसवर्ष प्राप्त २८७०–१०	३१११	२	मकानकिराया ३०० – ०		
पुरुषार्थ चंदा—			भोजनव्यय ७१६ – ८		
इसवर्ष प्राप्त ६२९ –१४			यंत्रदुरुस्ती ७६ – ०		
बाद पेशगी ३६७ –१०	२६२	४	स्टेशनरी ८०८ – ०		
विज्ञापनसे प्राप्त ..	६६	१०	रेलवेव्यय ३१९ –१५		
पुस्तक विक्रयसे प्राप्त ..			साधारणव्यय ६४ – ६	७७३५	१
पुस्तक विक्रय ५४८१–१३			**घटाव**		
बाद कमिशन १११५–१२	४३६६	१	टाइपका ८५० – ०		
पुस्तक संग्रह (वर्षके अंतमें)	११७६९	८	यंत्रका २५० – ०		
स्थिर ग्राहक चंदा—			पुस्तकालयका १०० – ०	१२००	०
गतवर्षका शेष १६९ – ०			**आयका शेष**	५७२	५
इसवर्षमे प्राप्त ६९ – ८					
२३८ – ८					
बाद पेशगी ७ – ८	२३१	०			
रु.	२३७५८	१३	रु.	२३७५८	१३
आयका शेष (लाभ)	५७२	५	**स्थिरकोशमे जमा**	२३३०	९
दान प्राप्ति —					
प्रतिपालक वर्ग १२०० – ०					
पोषक वर्ग २७५– ०					
मासिक सहायता १२०– ०					
इतर " १६३– ४	१७५८	४			
रु.	२३३०	९	रु.	२३३०	९

स्वाध्यायमंडल औंधका आर्थिक अवस्था पत्रक (ता.३१।१२।२५ के दिन)

परिशिष्ट संख्या ३

कोश और कर्जा	रु.	आ.	संपत्ति	रु.	आ.
स्थिरकोश—			**मुद्रणालय—**		
गतवर्षका शेष ११२२०-१३			मकान १०४३७- १		
इसवर्षकी आय			यंत्रादि ५१४९-११		
मेंसे २३३०- ९	१३५५१	६	टाइप आदि ३०६०- ७		
यंत्रादि घटाव कोश—			अन्यसामान १२२१- ८	१९८६८	११
गतवर्षका ४६७- ३			फरनिचर	१४७	४
इसवर्षमें १२००- ०	१६६७	३	**पुस्तकालय**	१७७१	०
कर्जा —			**संग्रह**		
१ स्थिरसहायकोंसे	१०५०	०	पुस्तक का ११७६९- ०		
२ कागज आदिके लिये	२०३१	९	कागज आदि २५०- ०		
३ चंदा पेशगी			स्टेशनरी २३५- ०	१२२५४	०
स्थिरग्राहक ७- ८			रोकड—		
पुरुषार्थ ३६७-१०			औधमें २०२- ६		
वैदिक धर्म ९००- ०	१२७५	२	म. बाबुलालजी १०८- ८	३१०	१४
४ स्टेटबैंकआदिसे	१४७७६	९	केपास		
	३४३५१	१३		३४३५१	१३

गुजराती पुस्तकोंका सन १९२४ वर्षका आयव्यय (ता.१।१।२४ से ता.३१।१२।२४तक)

परिशिष्ट संख्या ४

आय	रु.	आ.	व्यय	रु.	आ.
गतवर्षकी रोकड	१८६	१३	**कामिशन**	२	८
पुस्तक विक्रयसेप्राप्त	१२	८	**रोकड शेषवर्षके अंतमें**	१९६	१३
रु.	१९९	५		१९९	५

दान का ब्यौरा ।

मासिकदान ।

बा. शिवप्रसाद जी गुप्त काशी रु.६५)
श्री. वा. स. मराठे मुंबई ५५)
रु. १२०)

इतर दान ।

पं. हरिशरण जी गुरुकुल कांगडी ४१)
म. रामशरण रामरत्नजी पूर्णा २५)
श्री. आर्यसमाज डे. इ. खान २०)
म. निरंजनदासजी जम्मू ११)
" पन्नालाल शामलालजी, कोंच १०)
" मुन्शीरामजी. समराला ९)
पं. सत्यदेवजी नागपूर ८)
" ठाकुरदास शर्मा मिंटगुमरी ५)
" शालिग्रामजी जोशी ५)
" गणपति शर्माजी देहली ५)
म. बलदेवजी सारंग ५)
" गुरुप्रसादजी रायकोट ५)
श्रीमती तापीबाई जी मुंबई ५)
म. गणपतरावजी आर्य अवलियापुर ४)
पं. मूलचंदजी मानपूर २)
म. गणेश बिहारीलाल जी २)
म. देवीप्रसादजी ।)
१६३।)

प्रतिपालकवर्ग ।

श्री. कृष्णराव भाईजी मुंबई १०००)
" वामनरावजी नाइक बेगमपेठ२००)
१२००

पोषकवर्ग ।

म. कुलभूषणजी श्रीगोविंदपूर १००)
पं. ठाकुरदत्तशर्मा वैद्य अमृतधारा, लाहोर ५०)
राय. ठाकुरदत्तजी धावन डे. इ. खान ५०)
पं. रामचंद्रजी अंबाला २५)
" पंढरिनाथ इनामदार औंध २५)
डा. गं. कृ. किर्लोस्कर हैदराबाद २५)
२७५)

स्थिरसहायकवर्ग

म० ठेठाराम चूडामणी २५)
" हंसराजजी सेठी २५)
" गंगा प्रसादजी टिहरी ५०)
पं. मेहर चंदजी वैद्य श्रीगोविंदपुर १००)
२००)

स्थिरग्राहकवर्ग ।

श्री० धर्ममंत्री म० जिंदारामजी लाहौर १०)
म. तख्तरायजी मदन कोटा ९)
" रख्याली रामजी गुप्त नीमच ६॥)
" हरनारायण जी, तलैयाचूरण ६)
पं० श्रीकृष्णजी जोशी आलमोडा ५)
म० जयशीरामजी धर्मशाला ५)
" नत्थूरामजी बल्लबगढ ५)
" शिवप्रसादजी जसीदीह ५)
" शादीरामजी मेरठ ५)
श्रीमती तापीबाईजी मुंबई ५)
म. सत्यदेवजी नागपुर ४)
" मैकूलालजी महरौली ४)
६९॥)

वृक्ष एक पतले हर वृक्षकी अपेक्षा हवा के झाक से गिर जाता है छोटीसी बेंत का क्षुर पानी के बडे से बडे प्रवाह का खुशीसे स्वागत करता है इसमें लचक है इसी प्रकार हमारी मांस पेशीयोंमें परमात्माने स्वभावतः लचक संकोच विकाश पैदा किया है यदि हम इसे पूर्ववत् बनाये रक्खें तो हम निरोग और दीर्घायु रह सकते हैं-और यदि हम इनको नष्ट कर दें अथवा सर्वदा एक ही अवस्था मे चाहे संकोच की चाहे विकाश की वहभी हानिकारक है।

(क्रमशः)

शास्त्रार्थ सहायता।

आज ता. ३०।७।२५तक जो शास्त्रार्थ सहायता हमारे पास प्राप्त हो चुकी है वह यहा नीचे दी जाती है।

शास्त्रार्थ की तिथि अभीतक अनिश्चित है। तथापि आनंद की बात यह है कि इतने समयमें हमारी तैयारी परिपूर्ण हो गई है।। अब किसी भी दिन शास्त्रार्थ शुरू होगया तो हम उस समय विना संदेह अपना कदम आगे रख सकते हैं।

आर्य शास्त्रों के वचन इकट्ठे हो गये हैं, उनकी प्रकरण व्यवस्था बन चुकी है, उनके बलाबलका विचार होगया है अब हम प्रति पक्षीकी सूचनाका ही इंतजार कर रहे है।

यज्ञ विषयक हमारी पुस्तक भी तैयार हो चुकी है। आज तारीख तक शास्त्रार्थ सहायता ग्यारहसौसे ऊपर हो गई है और हमें अब पूर्ण आशा है कि अगले मास तक यज्ञविषयक पुस्तक मुद्रणार्थ जितनी आर्थिक सहायता आवश्यक है हो जायगी। इस लिये अब यह पुस्तक मुद्रणार्थ भेजी है। इस लिये जो महाशय इसकार्यके लिये सहायता देना चाहते है वे अपनी सहायता शीघ्र भेज दें।

इस समय तक प्राप्त सहायता यह है—

म. काशी प्रसाद जी.	५)
पं. प्रसाद राम जी	१)
म. कुलभूषण जी	५)
श्री. मेहरचंद शर्माजी	२)
म. भूषणलाल के शाह	१०)
म. विष्णु चन्द्रजी सँगल	३)
मुं. दुर्गाप्रसादजी	१)
सेठ चातूमलजी	१)
मुं. बनवारीलाल जी	१)
म. जैराम सिंहजी	१)

मुं. श्याम सुंदरलालजी	२)
पं. धूलजी	१)
गुप्त दान	१)
बा. दामोदर दास जी	१)
बा. राम दयाल जी	१)
पं. बल्लभ दास जी	१)
मुं. चन्दर भानजी	१)
बा. राम गोपालजी	१)
सेठ सोभाग मलजी	२)
पं. भगवानदासजी	१)
पं. वासुदेव महादेवजी	१)
बा. भगीरथलाल जी	१)
बा. शंभू दयाल जी	२)
पं. महादेव नारायण जी	१)
बा. गेंदालाल जी	१)
पं. ननूलालजी	१)
सेठ पंचम सिंहजी	१)
" गोपाल जी	१)
मुं बद्दू लालजी	१)
सेठ धूलजी	१)
" लखमी चन्दजी	१)
मुं. जगन्नाथ प्रसादजी	१)
मुं. गंगा सहायजी	१)
सेठ देवचन्दजी	१)
जती कल्याण विजय	१)
बा. हीरालाल जी	१)
पं. शंकरलालजी	१)
मुं. जालम सिंहजी	१)
बा. हजारी लालजी	१)
बा. शिवबरन सिंहजी	१)
सेठ नाथु लालजी	२)

पं. गोकुलदासजी		१)
सेठ अमृत लालजी		२)
" जीत मलजी		१)
मुं. माधव लालजी		१)
पं. कुन्दन प्रसादजी		१)
पं. गौरी शंकरजी		१)
मु. राम प्रसादजी		१)
सेठ मोजी लालजी		१)
म. छोगमलजी		१)
म. बाल गोविंदजी		१०)
म. भीमसेन जी		४)
मंत्री आर्य समाज बल्लभगड		२)
म. भोज राजजी नायडू		१५)
म. लूनकारणजी		५)
पं. बलदेव शर्माजी वैद्य		१)
म. कान्तिलालजी		२)
कारकून जगन्नाथजी		१)
कोषाध्यक्षजी आर्यसमाज मूलतान		
	३९)	
मालिक गुरदयालजी	२५)	
	६४)	
म. ऑ कामिशन	||।-)	
	६३≡)	६३≡)
पं. गियन चंदजी		५१।=)
डॉ· एस्. आर. सिंहजी		५)
म. बुध रामजी		४)
म. महाराज जी		१०)
बा. राम प्रसादजी		५)
योग		२५२॥-)
पूर्वमास में प्रकाशित		८७७|||=)
सर्वयोग		११३०।≡

मेधा- याचना

(ले०— श्री०पं० सूर्यदेवशर्मा साहित्यालङ्कार)

ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य
मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ यजु० ॥

शिखरिणी = जिसे पाते ज्ञानी, विबुधवर, जो देव वरते ।
सुधी मेधा नामी, पितर जन, जो प्राप्त करते॥
वही सर्वज्ञाग्ने! सदय अब, दीजै श्रुतिपते !
बनूं मेधावी मैं, विमल चित, सद्भाव भरते ॥

ओ३म् मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्ने प्रजापतिः ॥
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता दधातु मे स्वाहा॥यजु.

प्रवरललितावृत्त= मुझे मेधानामी, वरुणवर, ही बुद्धि दीजै ।
प्रजा के हे स्वामी, श्रुति श्रवण, से शुद्धि कीजै॥
विधाता हे वायो! विभववर, विज्ञान दीजै ।
प्रभो! मेधा द्वारा, पद अमर, का दान कीजै ॥

सर्पविष दूर करनेका वैदिक उपाय ।

सर्प विष बहुत प्रखर है । प्रतिवर्ष सहस्रों मनुष्य इस विषसे मृत्युके घर पहुंचते हैं । वास्तवमें डाक्टर और वैद्यों का ध्यान इस ओर अधिक आकर्षित होना चाहिये । परंतु इस भारत वर्षमें हमने इस समयतक ऐसे एकभी वैद्यका या एक भी डाक्टरका नाम नहीं सुना कि जो इस विषबाधाके कष्ट दूर करनेका उपाय ढूंढनेमे पूर्ण रीतिसे लगा हो ।

जहां विष उत्पन्न हुआ है वहां उसकी निवृत्तिका उपायभी बना है, मनुष्यको चाहिये, कि वह प्रयत्न करे, पुरुषार्थ करे और उसे ढूंढकर निकाले और अपना आरोग्य बढाकर अपने धार्मिक कर्तव्य करनेमे दत्तचित्त हो ।

सर्प विष निवृत्तिका उपाय ढूंढनेके लिये हमने जो

यथामति प्रयत्न किया था, और जो खोज की थी उस विषयका पुस्तक "वैदिक सर्प विद्या" नामसे स्वाध्याय मंडल द्वारा प्रसिद्ध हो चुका है। इसके पश्चात् अग्नि-पुराण आदि ग्रंथोंमें बहुतसे उपाय है इस विषयका पता लेखद्वारा श्री. वैद्यराज पं० तिलकरामजी अमृतसर निवासी ने हमें दिया जो लेख हमारे पास रखा है। समय आनेपर प्रसिद्ध किया जायगा।

इतना होनेपर भी जैसा सुगम उपाय चाहिये वैसा अभीतक प्राप्त नहीं हुआ। यह विचार मनमें था ही इतनेमें निम्नलिखित वेदका सूक्त पढनेमें आगया और इसमें विषहारक अनेक उपाय लिखे हुए प्रतीत हुए। "वैदिक सर्प विद्या" पुस्तक लिखनेके पूर्व यह सूक्त पढा तो था परंतु इसके निर्देशों की ओर जैसा जाना चाहिये वैसा ध्यान गया नहीं था। अब प्रतीत होने लगा है कि, इसमें विषबाधा और सर्पविषबाधा हटाने के भी उपाय हैं और विशेष विचार करनेपर इस सूक्तमेंसे बहुतसे बोध प्राप्त हो सकते हैं। इस लिये अधिक विचारणार्थ यह सूक्त पाठकों के सन्मुख हम रखते हैं। इसका छंद ऋषि निम्न प्रकार है-

कंकतः षोळशोपानिषदानुष्टुभमप्तृणसौर्यं विषघ्नं-कावानगस्त्यः प्राब्रवीत् । दशम्याद्याश्चतस्रो महापंक्त्यो महाबृहती चेति।

"कंकतः इस सूक्तके सोलह मंत्र हैं। यह उपनिषद् अर्थात् रहस्यविद्या बतानेवाला सूक्त है। इसकी देवता आप् तृण और सूर्य है। इसका ऋषि अगस्त्य है और इसमें अनुष्टुभ, महापंक्ती और बृहती ये छंद हैं।"

इस अनुक्रमणिकाकार के कथन में यह सूक्त उपनिषद् है अर्थात यह रहस्यविद्या है ऐसा एक वाक्य आया है। अर्थात् यह एक अपूर्व गुप्तविद्या है इस रहस्यविद्या की खोज करना आर्योंका परम धर्म है। "वेदका पढना पढाना सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है," इसका स्वीकार हर एक करते हैं, परंतु वैदिक रहस्य विद्याकी सच्ची खोज करनेमें कितने विद्वान समर्पित होगये हैं यही एक विचारणीय प्रश्न है। अस्तु।

इसकी देवतायें तीन हैं आप्, तृण और सूर्य। आप् शब्द जलवाची है और जल नामों में "विष" एक नाम है इस लिये आप शब्दसे ही जल और विष दोनों का ग्रहण यहां होता है और विषनाशनका इस प्रकार बोध इस मंत्रसे प्राप्त हो सकता है।

"तृण" देवता दूसरी है। इस शब्दका अर्थ सामान्य औषधिमात्र है। औषधि और वनस्पतियोंका इस शब्दसे ज्ञान होता है।

"सूर्य" शब्द बाह्य सूर्य और जीवोंका आत्मा का भी वाचक प्रसिद्ध है।

ये इन देवतावाचक शब्दोंके भाव संक्षेप से यहां हैं। पाठक इनका अधिक विचार करें और अधिक विस्तार से तात्पर्य जानने का यत्न करें। शौनकाचार्य इस सूक्तके विषय में कहते हैं-

कंकतो नेति सूक्तं तु विषार्तः प्रयतो जपेत्।
विषं न क्रमते चास्य सर्पाद् दृष्टिविषादपि ॥
मत्कीटलूतासु विषं दंष्ट्रिवृश्चिकतश्च यत् ।
मूलं च कृत्रिमं चैव जपन्सर्वमपोहति ॥

ऋग्विधान १।२८

"कंकतो न यह सूक्त विषबाधासे दुःखी मनुष्य शुद्ध होकर जपे, दृष्टिसे विषबाधा करनेवाले सांपका विष भी इससे चढता नहीं। सांप, बिच्छू, तथा दूसरे विषैले कृमि इनका विष तथा कृत्रिम अथवा अकृत्रिम विषभी इससे उतरता है।"

इस सूक्तके जपका महात्म्य इस प्रकार शौनकाचार्य देते हैं। सूक्त के केवल जपसे यह सिद्धी होती है या नहीं इस विषयमें हमें बडा संदेह है। परंतु हमारे.

पास कई विद्वानों के पत्र हैं, जो कहते हैं कि केवल मंत्र पाठसे सर्पविष दूर होता है। परंतु हमने इस विषयमें इस समयतक जो खोज की है उससे हम यह कहने को इस समय तैयार नहीं हैं कि केवल मंत्र जपसे यह सिद्धि हो सकती है।

आचार्य शौनक का यह वचन हमने यहां इसलिये दिया है कि, उनका यह विश्वास था और उस समयके कई विद्वानोंकाभी यह विश्वास था। तथा इस समय के कई विद्वान भी ऐसे मंत्रसिद्धि पर विश्वास करते है। इन सब को इतनाही कहना है कि, केवल आचार्य या ऋषि वा मुनिका वचन है, इसी लिये उसको प्रमाण माननेके दिन बिलकुल चलेगये है उन दिनों में से एक क्षण भी अब अवशिष्ट नहीं रहा है। अब ऐसे दिन आगये है कि, प्रयोगसे अपनी विद्याकी स्थापना करनी चाहिये, तभी उसकी मान्यता हो सकती है अन्यथा नहीं। इसलिये जो लोक मंत्र-सिद्धिके पक्षपाती है, वे अपना विश्वास कृतिके रूपमें सिद्ध करके बतावें और केवल प्राचीन वचनों पर ही हवाला देते न रहें। जब तक उनका विश्वास कार्य रूपमें नहीं दिखाई देता तबतक उनपर विद्वानोंका विश्वास स्थिर नहीं रह सकता।

इस समय हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस सूक्त में रहस्य अर्थात् गुप्त रूपसे कई प्रयोग ऐसे बताये हैं कि, जिनके करनेसे सर्पविष जैसे भयंकर विषभी दूर हो सकते है। इस सूक्त के सभी प्रयोग करके देखने योग्य हैं, परंतु सब मंत्रोंका ठीक ठीक अर्थ इस समय तक हमारे ध्यानमें नहीं आया है इस लिये जितने मंत्रोंका थोडासा अर्थ हमारी समझमें आगया है उसीके विषयमें हम अपने विचार किये हुए प्रयोग के साथ पाठकों के सन्मुख रखना चाहते है।

इयत्तिका शकुंतिका सका जघास ते विषम्।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार। ऋ. १।१९१।११

सायनभाष्य—इयत्तिका ... बाला शकुंतिका ... कपिंजली। सा ते विषं जघास भक्षितवती। सा विषहर्त्रीति प्रसिद्धा। सा उ चित् न मराति न म्रियते नित्यप्रतिपक्षत्वाद्विषस्य। नो वयं मराम। ..."

तात्पर्य—यह ... बालिका कपिंजली पक्षिणी है। यह तेरा विष भक्षण करती है। वह विष हरण करनेवाली प्रसिद्ध है। वह स्वयं नहीं मरती क्यों कि उसका स्वभाव ही विषनाशक है और हम भी नहीं मरते ... "

इस सायन भाष्यको देखनेसे पता लगता है, कि शकुंति पक्षिणी विषको दूर करनेवाली है। अब इसी मंत्रका स्वामिभाष्य देखिये –

स्वामिभाष्य—इयत्तिका बाला .... शकुंतिका कपिंजली सा ते विषं जघास अत्ति। सो सा चित् नु न मराति। नो वयं मराम अस्य योजनं आरे भवति। हरिष्ठाः त्वा मधु चकार। एषा अस्य मधुलाऽसि।

अर्थ—हे विषभयसे डर हुए जन! जो इतने विशेष देशमें हुई कपिंजल पक्षिणी है वह तेरे विषको खालेती है। वह भी शीघ्र नहीं मरे और हम लोग न मारे जांय। इस पक्षिणी के संयोगसे विषका योग दूर हो जाता है। हे विषधारी! विषहरनेमें स्थिर विष हरने वाले वैद्य तुझे मधुरताको प्राप्त करता है। इसकी मधुरता ग्रहण कराने और विष हरने वाली विद्या है।

(स्वामीदयानंद भाष्य ऋ. १। १९१। ११)

अब इसीसूक्तका और एक मंत्र देखिये—

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः।
तास्ते विषं विजभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव॥
ऋ. १।१९१।१४

सायन भाष्य — त्रिः सप्तैव विंशतिसंख्याका मयूर्यः मयूरस्त्रियः। ता विषकारिसर्पद्वेषिण्य इति

प्रसिद्धाः। .... तथा सप्तैतत्संख्याकाः सर्पणस्वभावाः स्वसारः स्वयमेव सरणा अग्रुवः। सुरगंगाद्याःप्रसिद्धा नद्यः सन्ति। तास्ते....तव विषं विजभ्रिरे विशेषेण हरन्तु ॥

तात्पर्य -- इक्कीस मोरनीयां। विषकर सर्पोंका द्वेष करनेवालीं प्रसिद्ध हैं। तथा सात नदियां - गंगा आदिक भी -- तेरे विषका हरण करें।

इस मंत्रपर स्वामी भाष्य देखिये --

स्वामिभाष्य-- त्रिःसप्त एकविंशतिधा मयूरस्त्रियः सप्त स्वसारः भगिन्य इव सर्पादिनाशने सुखप्रदाः अग्रुवः अग्रगामिन्यो नद्यः। ते विषं प्राणहरं विजभ्रिरे हरंतु। उदकं कुम्भिनीः .इव यथा जलाधिकारिण्यः ॥

अर्थ-हे मनुष्य! जो सात बहिनियोंके समान तथा आगे जानेवाली नदियों के समान इक्कीस मोरनी हैं, वे जलको जलका जिनके अधिकार है वे घट ले जाने-वाली कहारियोंके समान तेरे विषको विशेषतासे हरें।

(स्वामी दयानंद भाष्य मं० १।१९१।१४)

इस सूक्त के ये दो मंत्र हैं जो इस लेखमें विचार करनेके लिये लिये है। इस मंत्रमें वास्तवमें १६ मंत्र है और उनमें रहस्य की बातें अनेक है, परंतु हमारे पास इस समय इतने साधन उपस्थित नहीं हुए कि, उनके प्रयोग किये जांय और कुछ परिणाम तक हमारी खोज पहुंचे। इसलिये अन्य मंत्रों का विचार छोड कर इन दो मंत्रों को ही इस लेखमें विचार करने के लिये लिया है।

पूर्व स्थान में दो मंत्र और दोनों भाष्यकारों के भाष्य दिये हैं। दोनों भाष्यकार इन मंत्रों में विषहारक कपिंजली और मोरनी का वर्णन देखते हैं। और मानते हैं कि, इन पक्षिणीयोंके कुछ योगसे विष दूर होता है।

सायनने कुछ भी प्रयोग दिया नहीं है, जिससे कि ज्ञात हो सके कि इन पक्षिणियों का किस विधिसे उपयोग करना। श्री० स्वामिजी ने अपने भाष्यके भावार्थ में निम्न लिखित बातें लिखी हैं--

भावार्थ--(मंत्र ११) = मनुष्य जो विष हरनेवाले पक्षी हैं उन्हें पालन कर उनसे विष हराया करें। (मंत्र १४) = मनुष्योंको जो इक्कीस प्रकारकी मयूर की व्यक्ति है वे न मारनी चाहिये किन्तु - सदैव उनकी वृद्धि करने योग्य है। ... "

इस भावार्थ में ये विष हरने वाले पक्षी हैं और इनकी पालना करनी चाहिये इतनी ही बात है। किस प्रयोग से विष हरण करना चाहिये इसका विवरण नहीं है।

ग्यारहवें मंत्रमें एक शकुंत पक्षीण का वर्णन है जो विष हरण करती है। परंतु चौदहवें मंत्रमें (त्रिः सप्त) तीन सातवार अथवा सात तीनवार अर्थात् इक्कीस मोरनी- मयूर स्त्रियों का वर्णन है। क्या ये इक्कीस मोरनियों की जातियां हैं जिनकी कि रक्षा करनेका उपदेश हुआ है अथवा यह इक्कीस मोरनीयोंकी संख्या यहां अभीष्ट है।

यही शंका (सप्त स्वसारः अग्रुवः) सात बहिनों के विषय में है। अग्रुवः शब्द नदी वाचक वैदिक वाङ्मय में है और पूर्वोक्त दोनों भाष्यकारोंने इसका अर्थ नदी हि इस मंत्र में लिया है। सप्त नदियां किस रीतिसे विष का नाश करतीं हैं यह एक विचार करने योग्य विषय है। सात नदियोंका जल विष दूर करनेवाला है यह अर्थ इस वाक्य का है, वा इसका कुछ अन्य अर्थ है यह प्रश्न है। अनेक बार विचार करनेपर भी इसका कोई उत्तर नहीं निकल आया। इसलिये मंत्रकी यह बात इस समय तक अज्ञात ही रही है।

पूर्वोक्त दो मंत्रोंमें "शकुंतिका और मयूरी" ये दो शब्द पक्षिणी के वाचक हैं। "शकुंतिका" शब्दका

अर्थ "कौवी, मुर्गी, भास पक्षीण" है अर्थात् ये तीन जातीकी पाक्षिणी इस शब्दसे ली जाती है। इनमेंसे कौनसी विष नाशक है इसका विचार सुयोग्य वैद्योंको करना चाहिये।

"मयूरी" मोरनी का अर्थ एक ही है। इस लिये इस शब्दके अर्थ के विषयमें कोई संदेह नहीं है, परंतु इसके साथ जो संख्या "तीन गुणा सात" यह लगाई है वह संदेह उत्पन्न करती है। श्री० स्वामिजीके भाष्यमें "इक्कीस प्रकारकी मयूरकी व्यक्ति" लिखा है इस विषयमे यह विचार करके ही निश्चय करना चाहिये कि मयूरियोंमें इक्कीस जातियां यहां अपेक्षित है वा इक्कीस मोरनियां अपेक्षित हैं।

मोरोंमें अथवा मोरनियोंमें कितनी जातियां अथवा प्रकार हैं, उनमें विषहारक कौन कौन है और विषके साथ संबंध न रखनेवाली कितनी हैं। इस प्रश्नका उत्तर हमारे पास इस समय नहीं है क्यों कि मोरकी कितनी जातियां है इसकी खोज इस समय तक किसीने की नहीं है। इस कारण मोरकी इक्कीस व्यक्तियों अथवा इक्कीस प्रकारकी मोरनीयोंके विषयमें हम कुछ कह नहीं सकते। पाठक इस विषयकी खोज करें।

विष हारक पक्षिणीयों के विषमें जो खोज यहां हुई है उस विषयमें यहां इस समय थोडासा लिखते हैं। इस खोज से पूर्वोक्त मंत्रोंपर बहुत प्रकाश पड सकता है।

प्रथम मंत्रमें "शकुंतिका" शब्द है जिस शब्दका अर्थ "कौवी, मुर्गी और भास पक्षीण" है। इन में से "मुर्गी" का प्रयोग किया गया। जिसका वर्णन डा. ग. य. वाटवे (M. B. B. S.) सिरहट्टी (जि. धारवाड) महोदय जी के शब्दोंमें ही हम पाठकों के सन्मुख रखते हैं-

(१) सर्पदंश होते ही पहिली बात यह करनी आवश्यक है कि दंशस्थानके ऊपर ७। ८ अंगुल पर रस्सीसे अच्छी प्रकार बांधा जावे। इससे विषका ऊपर हृदयकी ओरका प्रवाह रुक जाता है।

(२) दंश के स्थानपर चक्कूसे अच्छी प्रकार काट कर खून निकालना चाहिये। जिससे खून के साथ विषभी बाहर आने लगता है। इस समय इतना अवश्य ध्यान में धरना चाहिये कि चक्कू दिवेपर अथवा आगमें धर कर उसको अग्निद्वारा शुद्ध करना योग्य है। अन्यथा चक्कूके ऊपर के मलका प्रवेश खूनमें होकर कुछ व्रणकी अवस्था बिगडने का संभव होता है। इस विधिसे सर्प दंश के स्थान से अच्छी प्रकार खून बहाना अत्यावश्यक है। यह इस ढंगसे जखम का मुंह बडा करना मुर्गी के प्रयोग के लिये आवश्यक ही है।

(३) पश्चात् मुर्गियां कमसे कम दस लानीं चाहिये। प्रायः प्रत्येक ग्राममें जितनी चाहिये उतनी संख्यामें मुर्गियां हरएक समय मिलजाती है। तथापि सर्प विष बडा प्रबल होनेके कारण दस पंद्रह मुर्गियां मिलनेतक इंतजार करना योग्य नहीं। जितनी मुर्गियां मिलजांय उनको लेकर प्रयोगका प्रारंभ करना योग्य है।

(४) मुर्गी हाथ में पकडकर उसके गुदा के पासके पर झटपट निकाल कर उसकी गुदाके पासका भाग स्वच्छ करना चाहिये, और दंशके स्थानपर गुदाका भाग लगाना चाहिये। मुर्गी उड न जाय और इधर उधर न हिले इस लिये जोर से उसको सर्पदंशके स्थान पर दबाकर रखना चाहिये। मुर्गीके गुदद्वार में विष चूसनेका गुण धर्म है, इस लिये मुर्गीकी गुदा वहां लगते ही वह विष आकर्षित करने लगती है। इसकी गुदामें विषका आकर्षण करनेकी विलक्षण शक्ति है। परमात्माकी अद्भुत लीला है जिसने ऐसी विलक्षण शक्ति मुर्गी की गुदा में रखी है।

प्रायः एकदो मिनिटोंके अंदर ही मुर्गी को मृत्यु आनेके चिन्ह होने लगेते हैं, उस का श्वास बढता है और मूर्च्छना भी आने लगती है। दो ढाई मिनिटोंमें मुर्गी अपनी गर्दन संभाल नहीं सकती इतनी मूर्च्छित हो जाती है और चार मिनिटोंके अंदर ही मर जाती है। इसलिये दो ढाई मिनिटके पश्चात् अर्थात् अपनी शक्तिके अनुसार उसके विष खींचनेके पश्चात् उस मुर्गी को छोड देना और पूर्वोक्त प्रकार दूसरी मुर्गी जखमपर लगानी चाहिये। इस प्रकार सावधानतासे मुर्गी लगानेपर मुर्गीभी मरती नहीं और विषभी दूर हो जाता है।

तीन मिनिट तक जितना विष मुर्गी अपनी गुदासे खींचलेती है उतने विषसे उसके शरीरपर कोई बुरा परिणाम नहीं होता। अर्थात् इतना विष हाजम करनेकी शक्ति उसके शरीरमें है अथवा उस विषका नाश करनेका बल उसके खून में है।

इस विधिसे और इतनी सावधानतासे एक के पीछे दूसरी, दूसरीके पीछे तीसरी इस प्रकार मुर्गीयां लगाते जाना चाहिये। इस प्रकार करते करते अंतमें ऐसी अवस्था आजाती है कि मुर्गीके ऊपर कोई परिणाम नहीं होता। जब ५। १० मिनिट मुर्गी उस स्थानपर पकडने से भी कोई परिणाम नहीं दिखाई देता, तब समझना चाहिये कि अब विष सब का सब दूर होगया है।

यदि मुर्गीयां बहुत होंगी तो दो-दो मिनिट के पश्चात् मुर्गी बदलनी चाहिये। ऐसा करनेसे मुर्गी को भी कोई क्लेश नहीं होते और विषभी दूर होता है। परंतु यदि मुर्गीयां पर्याप्त संख्यामें प्राप्त नहीं हुई तो मुर्गीकी शक्ति समाप्त हो जानेतक उसको जखमपर लगाकर मनुष्यको बचाना चाहिये।

केवल दो मिनिट तक लगानेसे मुर्गी नहीं मरती, परंतु अधिक देर लगानेसे मुर्गी बचती नहीं। इसलिये मुर्गी यों की संख्या का विचार करके ही उसको कितनी देर लगाना इस बात का विचार करना चाहिये।

उक्त प्रकार मुर्गियोंसे सब विष आकर्षित हो जानेपर जो मुर्गी लगायी जायगी उसपर कोई परिणाम नहीं होता। यह अवस्था प्राप्त होनेपर " पर मैंगानेट आफ् पोटाश तथा आसीड टार्टारिक " समभाग एकत्र मिला कर वह मिश्रण जखम में भरदेना चाहिये। इस मिश्रण का परिणाम विष पर तो होता ही है। परंतु इससे और एक लाभ होता है वह यह है कि जखम के स्थानपर बडी जलन शुरू होती है। और इस कारण उस आदमी को कई घंटे तक निद्रा नहीं आती। इस प्रकार निद्रा न आना अत्यावश्यक है। सर्पसे काटे मनुष्यको पूर्व उक्त उपाय करनेके पश्चात् भी अठारह घंटे तक निद्रा नहीं आने देनी चाहिये। निद्रा आनेसे बडी हानी होना संभव है। अतः उक्त उपाय अवश्य करना चाहिये।

यह उपाय करनेके पश्चात् रोगी को आराम है, पसीना आना कम हुआ है, मूर्च्छा कम हुई है, सुस्ती हट गई है, इत्यादि आराम प्राप्त होनेके लक्षण दिखाई देनेपर रस्सीका बंध छोडनेका विचार करना चाहिये। तथापि एकदम सब बंध छोडना नहीं चाहिये। यदि एकदम सब रस्सीका बंध छोड दिया जायगा तो संभव है कि किसी स्थानपर रहा हुआ विषका अल्प अंश अंदर घुसकर पुनः बिगाड करेगा। इस लिये रस्सी छोडने के समय आधमिनिट ढिली करके पुनः सख्त बांध देनी, फिर १०।१५ मिनिट के पश्चात करना। इस प्रकार दोचार वार करके अनुभव देखना चाहिये। यदि विषका परिणाम कुछभी न रहा तो रस्सी का बंध बिलकुल छोड देना चाहिये।

रोगी के पेट में जलन अधिक हुआ तो ठंडा दूध और उत्तम मिश्री पीनेको देना योग्य है। उत्तेजक मिश्रण भी घंटे घंटे के बाद देना उत्तम है।

पूर्वोक्त बातों में (१) रस्सीका बंध, (२) चकूसे जखम का मुख बडा करना और (३) मुर्गी का गुदा प्रदेश जखमपर लगाना ये तीन उपाय मुख्य हैं। अन्य उपाय गौण हैं। इनके करनेसे रोगी सर्पके विषकी बाधासे मुक्त होकर आरोग्य प्राप्त कर सकता है। अनेक बार यह उपाय अजमाया है।

इसलिये पाठकोंसे भी निवेदन है कि जो पाठक सर्प विषपर यह उपाय अजमायेंगे, उनको उचित है कि वे अपने परिणाम से हमें सूचित करें।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें शकुंतिका शब्दके अनेक अर्थों में मुर्गी भी एक अर्थ है। यदि उक्त मंत्र में शकुंतिका का अर्थ मुर्गी मान लिया जाय, तो इस प्रयोग के साथ मंत्र का संबंध स्पष्ट प्रतीत होता है। मंत्रका कथन है कि "शकुंतिका विष भक्षण करती है, स्वयं भी नहीं मरती और रोगी को भी बचाती है।"

हमने ऊपर के प्रयोग में बताया कि "मुर्गी सर्पका विष जखम से अपनी गुदा द्वारा चूस लेती है। थोडी देर के चूसनेसे स्वयं नहीं मरती और इस प्रकार अनेक मुर्गियों का उपयोग करनेसे रोगी भी बच जाता है।"

मंत्रका कथन इस प्रकार क्रिया रूपमें दिखाई देता है। मंत्रमें कहे हुए ज्ञानका प्रत्यक्ष यह उपयोग और लाभ है। द्वितिय मंत्रमें इक्कीस मोरनीयों का उल्लेख है। यद्यपि हमने मोरनीयों का प्रयोग नहीं किया, तथापि मुरगीके समान ही मोरनी का भी उपयोग होना संभव है। ग्रामोंमें जितनी मुर्गीयां मिल सकती हैं उतनी मोरनियां नहीं मिल सकतीं और मोरनीको पकडना और लगाना भी कठिन है। तथापि गुण की दृष्टीसे समान गुण धर्म होना संभव है।

मंत्रका "त्रिः सप्त" शब्द इक्कीस संख्या का वाचक यहां मुरगी या मोरनी की संख्या बताता है ऐसा हमारा ख्याल है। अर्थात् विष बिलकुल हटाने के लिये इक्कीस मुरगीयां अथवा मोरनियां उपयोग में लानी चाहिये। यह हमने भी देखा है कि कठोर विष वाले सांपके विषके दूर करने के लिये बीस से अधिक ही मुर्गीयों का उपयोग करना पडता है। दो मिनिट के अंदर मुर्गीको हटाने से ही मुर्गी बच सकती है। अतः मुर्गीकी हिंसा यदि करना अभीष्ट नहीं है तो मुर्गीयां २१ अवश्य लगतीं है। यह विचार मनमें लानेसे मंत्रकी इक्कीस संख्या अवश्य अर्थपूर्ण प्रतीत होती है।

इस ढंगसे प्रयोगके साथ मंत्रका मनन करनेसे मंत्रके शब्दोंकी सार्थकता स्पष्ट नजर आजाती है। जिन शब्दोंका कोई विशेष अर्थ प्रतीत नहीं होता वेही शब्द विशेष महत्व पूर्ण हैं ऐसा प्रयोग करनेके पश्चात् प्रतीत होने लगता है।

पूर्वोक्त सूक्तमें "सूर्य, शकुंतिका, विष्फुलिंगक, मयूरी, स्वसा (अश्रुवः), कुषुंभक" इतने पदार्थ विषहारक होनेका वर्णन है। इन सब के प्रयोग करके किस रीतिसे और किस प्रयोग से इनका उपयोग विष दूर करनेमें हो सकता है इसका निश्चय करना वैदिक धर्मियोंका ही कार्य है।

वेदने ज्ञान आर्योंके सन्मुख रखा है अब देखना है कि वे इसका कैसा उपयोग करते हैं और किस रीतिसे लाभ उठाते है।

संकल्प शक्ति।

परिच्छेद १

(ले०-श्री. उदयभानु भैय्याजी)

पाठ १

संकल्प शक्ति का स्वरूप।

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक कार्य्य में यह अनुभव करता है कि जो कार्य्य उसने किया है उसके अन्दर किसी न किसी मानसिक शक्ति की आवश्यक्ता थी कि जिससे वह उस कार्य्य में सफल हुआ है। प्रत्येक कार्य्य चाहे वह सुगम हो या कठिन संकल्प की आवश्यक्ता रखता है। प्रत्येक मनुष्य के पास स्वाभाविक एक संकल्प-शक्ति होती है कि जिसकी सहायता से उसे इस संसार में विजय प्राप्त होती है।

संकल्प-शक्ति किसी विशेष आकार या रंगकी नहीं है अर्थात् वह एक मानसिक क्रिया है न कि किसी इन्द्रिय का विषय। इस कारण उसका ज्ञान उसकी उन्नति और उसके द्वारा प्रयास करने से ही प्राप्त हो सक्ता है अन्यथा नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति के पास संकल्प-शक्ति है जैसा कि उपर बतलाया जा चुका है और उसकी उन्नति प्रत्येक कर सक्ता है। संसार में कई मनुष्य उंचे होते हैं और कोई छोटे होते हैं कि जिस सीमापर दूसरे मनुष्य यदि उनमें वे बातें प्राकृतिक न हों तो प्रयत्न करने पर भी नहीं पहुंच सक्ते। ठिंगना मनुष्य ऊंचा नहीं बन सक्ता और ऊंचा मनुष्य न नीचा हो सक्ता है; यह कार्य्य प्रकृति का है। बरन संकल्प शक्ति के संबंध में यह नियम नहीं है। निःसंदेह कई मनुष्य स्वभाव से ही अधिकांश संकल्प-शक्ति वाले होते हैं कि साधारण पुरुष को उस अंश तक पहुंचने में बहुत परिश्रम और उचित समय की आवश्यक्ता पडती है। बरन यह निर्विवादित है कि संकल्प-शक्ति न्यून वा अधिकांश में प्रत्येक के पास होती है और प्रत्येक मनुष्य उसकी उन्नति कर सक्ता है।

संकल्प शक्ति की उन्नति संकल्प शक्ति की सहायता से ही हो सक्ती है; यावत संकल्प को संकल्प शक्ति की उन्नति में न लगाया जावे, संकल्प-शक्ति की उन्नति होना असंभव है। संकल्प शक्ति मानसिक क्षेत्र की अन्तिम वृत्ति है और उसीसे प्रत्येक कार्य्य प्रारंभ होता है।

संकल्प शक्ति से क्या लाभ है, उसकी उन्नति में क्यों प्रयत्न किया जाए, इस प्रश्न का उत्तर केवल यही है कि प्रत्येक कार्य्य संकल्प-शक्ति द्वारा ही होते हैं; अतएव कठिन कामों में सफलता प्राप्ति होने निमित्त अधिक संकल्प शक्ति की आवश्यक्ता पडती है। बनिस्बत सरल कामों के। आप यह जान गए होंगे कि आज पर्यंत जितने भी मनुष्य हुए हैं कि जिन्होंने

संसारमें अपने लिए या संसार के लिए कुछ भी किया है वे वेही व्यक्तिऐं थीं कि जिनके पास संकल्प-शक्ति पर्याप्त अंश में थी। कठिन से कठिन काम को असह्य आपत्तियें एवं प्रलोभनों के आते हुए भी नहीं छोडा कि जहां साधारण व्यक्ति कुछ भी अनुमान नहीं कर सकते। हम दूसरों की प्रशंसा करते हैं बरन यदि वही कार्य्य हमारे सन्मुख विद्यमान होता तो हम उसे किंचित भी न कर सके होते। क्या कारण है कि उस व्यक्ति ने उसे धैर्य्य के साथ समाप्त कर-लिया। कई प्रलोभन आए बरन उन सब पर विजय प्राप्त की।

उस व्यक्ति और सर्व साधारण में क्या भिन्नता थी; अवश्य ही कुछ शक्ति थी और वह साधारण न थी। विजय प्राप्त कराने वाली वह एक संकल्प-शक्ति थी; कि जिसके सन्मुख कोई कठिनता, प्रलोभन या असफलता नहीं ठहर सकी। संकल्प-शक्ति अनेक दैविक-शक्तियो को मनुष्य में उन्नत करती है, जहां वह अपने से संपन्न मनुष्य को आनन्द देती है वहां उस मनुष्य से संबंधित जनों को भी सुखदाई होती है। इससे वंचित पुरुष जहां हतोत्साहित होकर चिन्ता और तृष्णा की प्रचंडाग्नि में तडफते है वहां इसमें संपन्न मनुष्य अदम्य उत्साह के साथ पुरुषार्थ द्वारा विजय प्राप्त करते हैं.

यह दिव्य गुणवाली शक्ति अपने आप ही उन्नत होती है और और शक्ति की अपेक्षा नहीं रखती। उसका जितना सदुपयोग किया जायगा वह उतनी ही बढेगी, उसका अनुपयोग ही उसकी क्षति करता है। अन्य शक्तियोंकी उन्नति में अपर शक्तियों की सहायता और द्रव्य की आवश्यक्ता पडती है; बरन संकल्प- शक्ति अपने आप की ही शक्ति द्वारा बढती है, और अपने स्वामी को कभी घाटा नहीं देती। दूसरी शक्तियां संकल्प का आश्रय लेती है बरन संकल्प शक्ति किसी का आश्रय नहीं ढूंढती।

इस पुस्तक में संकल्प की उन्नति करने के लिए जिन साधनों का वर्णन किया है उन्में से कुछ साधन बालक के खेलवत् सरल एवं अनुपयोगी प्रतीत होंगे बरन सरल मार्ग का अनुसरण करने से ही मनुष्य उन्नति के उच्च शिखर पर पहुंच सकता है। कठिन कामों को प्रथम लेकर कार्यारंभ करने से मनुष्य मार्ग में ही अविजय प्राप्त कर हतोत्साहित हो जाता है।

हमारे कई पाठकगण संकल्प का इतना परिचय पाकर इस शक्ति को उन्नत करने में इतने उत्सुक हो गए होंगे और प्रायः आज ही इस लेख को समाप्त कर उध्दृत की गई शिक्षाओं में से कई एक का अनुसरण प्रारंभ कर देंगे बरन यह अशुभ चिन्ह है, क्योंकि इतना उत्तेजित उत्साह चिर-स्थायी नहीं होता। दो चार या आठ दिन में ही यह उत्साह अपनी प्राथमिक स्थिति पर पहुंच जाता है और परिणाम कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

हमारे पास न कोई यत्र है और न कोई ताबीज कि जिसकी भेट कर हम आपमें भीम-संकल्प उत्पन्न कर सकें। न कोई जादू की अंगूठी है और न कोई इन्द्रजाल की हस्तक्रिया। हमने न कोई ग्रह का आविष्कार किया है और न कोई टेलिस्मन् का, कि जिस उपहार को हम समर्पित कर शीघ्रोत्साहित होनेवाले पाठकों की सांत्वना कर सकें। बरन एक छोटी सी कुंजी ही हम सविनय भेंट करते है और वह है सतत परिश्रम और दृढता। अंग्रेजी में एक कहावत प्रसिद्ध है कि "Rome Was not built in a day" अर्थात् "रोम एक दिन में नहीं बना था।" यदि पाठक इस बातको समझलें कि जो वस्तु जितनी जल्दी उत्पन्न होती है उतनी

शीघ्रता से ही उसका पतन भी हो जाता है। इस कारण यदि आपको संकल्प शक्ति प्राप्त करना है तो धैर्य्य रख सतत-पुरुषार्थ की ही शरण लेना चाहिए। जिस दिन से आप इसका प्रारंभ करेंगे उसी दिन से आपको लाभ प्रतीत होने लगेगा।

पाठ २

संकल्प शक्ति का इतिहास।

कुछ अंग्रेज विद्वान यह कहा करते है कि भारतवासी हमसे कुछ सीख वैदिक मंत्रोंका कपोलकल्पित अर्थ कर लेते है और जिसका हम आविष्कार करते है उसका परिचय वैदिक सूक्तों में बतला देते है। 'Spiritualism' " प्रेतात्मा से बातें करना" इस विद्या का विरुद्ध पक्ष लेकर मैं एक अंग्रेज महोदय से बातें कर रहा था। उस समय उक्त महोदय ने यह भी कहा था कि योरोप अन्य विद्याओं के समान मानसिक विज्ञान मे भी भारत से आगे बढ गया है और हिन्दी भाषा में मानसिक विज्ञान पर लिखित पुस्तकों को अंग्रेजी पुस्तकों के आधार पर लिखी हुई बतलाया। हमारे कई देशवासी भी इसे स्वीकार कर लेते है। अतएव इस पाठ में मै यहां बतलाने का प्रयत्न करूंगा कि संकल्प-विद्या की उत्पत्ति और उन्नत्ति प्रथम कहां हुई—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति........

।शिव संङ्कल्पमस्तु

यजु. ३४।१

इस मंत्र में मानसिक तत्त्वोका विचार है और परमेश्वरसे प्रार्थना की गई है कि हमारा मन शुभ संकल्प करने वाला बने।

(२) संकल्प शक्ति के गुण।

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु। यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम ॥ अथर्व १९-४-२ ॥

अर्थात् दिव्यगुणों से युक्त उत्तम भग को उत्पन्न करने वाली (आकूतिम्) संकल्प-शक्ति को मैं आगे रखता हूं, चित्तकी जननी यह शक्ति हमारे लिए सहज मे बुलाने योग्य हो। जिस आशा को मैं प्राप्त होऊं वह मेरी कामना अकेली हो मन मे प्रविष्ट हुई इस संकल्प-शक्ति को मैं प्राप्त होऊं !! इस मंत्र में संङ्कल्प-शक्ति के निम्न लिखित गुणों का वर्णन है।

(१) देवीं अर्थात् दिव्य गुणोंवाली

(२) सुभगां=ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य ए ६ भग हैं संकल्प-शक्ति इनको प्राप्त कराने वाली है।

(३) चित्तकी माता

(४) केवली=एक और असङ्कीर्ण.

(५) सुहवा=सहज में प्राप्त होने योग्य।

(३) मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।

अथर्व ० ५। ३। ४

मेरे किए हुए दान इत्यादिक मुझे प्राप्त रहे मेरे मन का संकल्प सत्य हो। इस मंत्र में असत्य संकल्प के त्याग करने का वर्णन है।

वेदों में और भी वर्णन इस संकल्प-शक्तिका है बरन् यहां इतनाही देना पर्याप्त होगा। अब अन्यान्य ग्रंथों में देखिए।

मनुमहाराज ने भी संकल्प की महिमा इस प्रकार वर्णन की है। यथाः—

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमनियमाश्चं सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥

अर्थ-संकल्प, इच्छा-सिद्धि का मूल है। संकल्प से यज्ञ होते हैं। व्रत, यम और नियम भी संकल्पजन्य हे॥

पद्म पुराण में लिखा है कि " संकल्पेन विना राजन् ! यत्किंचित्कुरुते नरः फलञ्चाप्यल्पकं तस्य धर्मस्यार्धक्षयो भवेत् ॥

अर्थः- हे राजन् ! संकल्पके विना मनुष्य जो कुछ भी करता है उसका धर्म आधा रह जाता है और उसके कार्य्य का फल भी अल्पाल्प होता जाता है। लिङ्गार्चनतन्त्र के पांचवें पटल में लिखा है कि —

संकल्पं मानसं देवि ! चतुर्वर्ग प्रदायकम् ।

अर्थः—हे देवि ! मन का संकल्प चतुर्वर्ग का साधक है। चतुर्वर्ग नाम है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अर्थात् संकल्प से ही इन चारों की सिद्धि होती है।

रामायण और महाभारत सरीखे गौरवपूर्ण ग्रंथों के पढने से ज्ञान होता है कि संकल्प - शक्ति की उन्नति किस प्रकार की जाती थी। महाराजा दशरथ ने अपने संकल्प बल के ही कारण अपने वचनों को नहीं तोडा और मृत्यु जिससे कि सब प्राणी भय खाते हैं, के समर्पित अपने आपको कर दिया। इन ग्रंथों में असंख्य उदाहरण हैं बरन् उनकी कथा आज भी सर्व प्रसिद्ध होने के कारण उनका वर्णन कर इस लेख का कलेवर बढाना अभिष्ट नहीं है।

मि. फ्रेडरिक एनथोनी मेस्मेर (१७३४–१८१५) जोकि वायना Vienna का एक डाक्टर था। उसने मानसिक विज्ञान के कुछ नियम निकाले थे। बरन योरोप में उसकी बात को किसी ने स्वीकार नहीं किया। बरन उसकी मृत्यु के पश्चात् योरोप के विद्वानों ने उन नियमों के अनुसंधान से मानसिक विज्ञान में उन्नति करना प्रारंभ की।

हजरत ईसा के जन्मके पहिले ही वेद निर्मित हुए हैं और इस बात में योरोप के इतिहासज्ञ भी हमसे सहमत हैं तो अब पाठकवृंद ही इस बात का निर्णय करें कि मानसिक-विज्ञान का इतिहास कब और किस देश से प्रारंभ होता है।

वेद और शास्त्रों में यह विषय भरा पडा है और हर्ष है कि देश के विद्वानों का ध्यान अब इस ओर आकर्षित हुआ है।

पाठ ३

अदीन विचार।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः॥

मै. उ. ६ । ३४

स्वतंत्रता और परतंत्रता का कारण मन ही है। अर्थात् जिन मनुष्योंके मन में शुद्ध विचार उत्पन्न होते वे मनुष्य कभी परतंत्र नहीं रह सके। जो मनुष्य सदा दीन और निर्बल विचारों का मनन करते हैं वे कभी स्वतंत्र नहीं हो सके।

वेद उपदेश देता है कि " अदीनाः स्याम शरदः शतम्" दीन न करते हुए सौ वर्ष जीवित रहें। दीन हीन, निर्बल एवं कुत्सित विचारों के त्याग के लिए और सारी आयुष्य भरके लिए कह रहा है कि मनुष्य शुद्ध संकल्प शुभ विचार वाला हो।

अर्थ और इन्द्रिय का संयोग होने से मन में क्रिया उत्पन्न होती है। प्रत्येक क्रिया कालान्तर मे प्रतिक्रिया अवश्य उत्पन्न करती है प्रत्येक क्रिया मन में संस्कार उत्पन्न करती है बरन् ये संस्कार विना किसी विशेष प्रयत्न के या अकारण ही स्मरण नहीं होते, और न नष्ट होते हैं। किन्तु जब हम उसे खोजने के अर्थ एक नई क्रिया उत्पन्न करते है तब ये संस्कार इस नई क्रिया की शक्ति पाकर सबल हो जाते हैं और प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। अतः जितनी बार हम किसी विचार को दुहराएंगे और जितना ध्यान और महत्व उसे देंगे उतनी ही सहायता प्रतिक्रिया को दृढ एवं सुगम होने में मिलेगी। क्योंकि क्रिया और प्रतिक्रिया का संबन्ध समान है अर्थात जिस प्रकार क्रिया होगी

उसी अंश में प्रतिक्रिया भी होगी। विचारों द्वारा ही शरीर कार्य्य करता है। अतः बुरे विचार द्वारा मन में फिर बुरे विचार उठना और शरीर द्वारा बुरे काम किए जाना सिद्ध होता है। हमारा शरीर निर्बल है हम दलित हैं यदि हम इसी फिक्र में पडे रहें और अपने को बार बार निर्बल कहें और औरों से भी इसी प्रकार सुनते रहें तो इस क्रिया और प्रतिक्रिया के सिद्धांतानुसार हमारा स्वास्थ्य प्रतिदिन बिगडता ही जाएगा। जब क्रिया के बराबर प्रतिक्रिया का होना आवश्यक है अतः हम कुविचारों के संबंधमें जितनी मानसिक क्रिया कर आए हैं उतनी प्रतिक्रिया जब हो जाएगी तभी विचारों से मुक्त होंगे. प्रतिक्रिया भी उसी प्रकार होनी चाहिए कि, उसपर ध्यान न दिया जाए नहीं तो फिर प्रतिक्रिया के चक्कर में पडना पडेगा।

बहुधा मनुष्य किसी बुरी वस्तु के त्याग करने में उसकी बुराइ का निरंतर चिन्तन किया करता है। उस पर शोक और चिन्ता किया करता है। बरन् परिणाम यह होता है कि त्याग के बदले में वह उन प्रतिक्रियाओंके लिए मार्ग सुगम बना रहा है कि जिनकी क्रिया अभी हो रही है। इस कारण प्रत्येक मनुष्य को ऐसी परिस्थिति, मनुष्य, पुस्तक, दृश्य या शब्दों का त्याग करना चाहिये जो मनमें कुत्सित भाव उत्पन्न करें। मनको सदैव शुभ विचारोंसे प्रसन्न रखना चाहिये कि जिससे उसे बुराई या दुष्परिणाम के विचार करने का अवकाश ही न मिले। वेद कहता है:—

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

अर्थात् हे यजनीय प्रभो! हे देवेश्वर! हम कानोंसे सदा कल्याण को सुनें, आंखों से कल्याण को देखें, हमारे अङ्ग और उपाङ्ग दृढ होवें और आयुभर महात्मा सज्जनों की सेवा करें।

आप अपने अंदर से दीन हीन और दुर्बल विचारों का त्याग कीजिये और मन में धरिये कि मैं जो चाहूं सो कर सकता हूं। बहुतसे लोग अपने भाग्य या तक्दीर के भरोसे, तो कोई गृह या तारे के भरोसे तो कोई और किसीपर विश्वास करते हैं बरन उन्हें यह विचारना चाहिये पुरुषार्थ के बिना फल की प्राप्ति नहीं होती। योगवाशिष्ठ के वैराग्य प्रकरण में लिखा है कि पुरुषार्थ ही दैव है और कोई दूसरा दैव नहीं।

मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही मनुष्य बनता है। जैसे आप बोलते हैं,सुनते हैं, विचारते हैं या जो कुछ भी कर्म करते हैं वे सब ही आपके चित्त में संस्कार रूपसे अंकित होते हैं. दीन विचारों से दीन कर्म होते हैं जिससे उन्नति नहीं होती बरन् आत्मा और मन दोनों ही दीन बनाजाते हैं।

दीनता और परतंत्रता आत्मा के अनुकूल नहीं है। कई मनुष्य परमेश्वर से प्रार्थना करते समय यह कहा करते है कि मैं पापी हूं, नीच, दुष्ट, मूर्ख, खल और कामी हूं। बरन् यदि इन मनुष्यों को जनता में कोई पापी और मूर्ख कह कर पुकारे तो वे अति रुष्ट हो जाते हैं और इन्हें अपशब्द कह कर भविष्य में इन शब्दों का इनके प्रति व्यवहार करने के लिए निषिद्ध करते हैं, यदि ये वास्तव में ही पापी और दुष्ट है तो आत्मा में इतना क्रोध उत्पन्न करने की आवश्यक्ता न थी इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा के प्रसन्न करने निमित्त ये शब्द जाल थे। आत्मा अनुकूल पदार्थों से प्रसन्न और प्रातिकूल से क्रोधित होती है। इससे कर्मो सिद्ध होता है कि उच्च विचार ही आत्मा के अनुकूल हैं। अनुकूल कार्य्य से सफलता

और उन्नति दोनों होती हैं और प्रतिकूल से असफलता और अवनति होती है। इससे भी सिद्ध होता है कि मनुष्य को उच्च विचार जो कि आत्मा के अनुकूल हैं रखना चाहिए। तुफान का वायु बडा पराक्रमी है। जनता में अधिक समुदाय के भाव शिक्षित नहीं हैं, अतएव सोच विचार कर दृढता से विचारों में परिवर्तन करना चाहिए।

क्या आपने यह कभी अनुभव नहीं किया कि जब एक बडा भारी वजन जो कि मजदूरों से नहीं उठता है उसको उठाने केलिए "बहादुर ? वीरों !! उठालिया है !!!" इत्यादि उत्साहवर्धक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उत्साहवर्धक शब्दों को सुनकर मनुष्य में अदम्य उत्साह और नवीन शक्ति उत्पन्न होती है।

वीर नेपोलियन, कि जिसका नाम सुनकर सारा योरोप कांप उठता था, का सिद्धांत था कि असंभव कुछ संसार में है ही नहीं, मैं सब कुछ कर सकता हूं, मै विजयी हूं, मेरी विजय है, मेरे पास पराजय कभी भी नहीं आसक्ती।

यदि आप यह विचारें कि किस प्रकार आपके विचारों द्वारा आपका भावी जीवन आपके हाथ में है तो निःसंदेह आज ही से आप दीन विचार कभी भी नहीं आने देंगे।

उत वात पिताऽसि न उत भ्रातोत न: सखा।
स नो जीवातवे कृधि ॥ ऋग्वेद १०। १८६

हे महा शक्ति संपन्न परमात्मन्! तू हमारा पालक और संरक्षक है, तू हमारा भ्राता और हित करने वाला सखा है। हे प्रभो! हमारा आयुष्य बढाओ।

जब एक राजा का साधारण नौकर भी अपने स्वामी का अभिमान रखता है और दीनता का त्याग कर देता है तो आप अमृत जो परमात्मा है उसके पुत्र हैं सखा हैं और भ्राता हैं और सदा उसीके समीप रहते हैं, कितने अभिमानी होना चाहिए।

एक अंग्रेज कवि का कहना है कि:—

Though plunged in ills, and exercised in care
Yet never let the noble mind despair.

अर्थात :- चाहे चिन्ता और आपत्ति कितनी भी आवें परन्तु मनुष्य को हतोत्साहित कभी भी नहीं होना चाहिए।

हीन और मलीन विचारों को अपने मस्तिष्क में स्थान न दीजिए सदा ऐसे ओजस्वी विचार अपने मस्तिष्क में रखिए कि जो उत्साह का वायुमंडल अपने चारों ओर उत्पन्न कर सके। अपने मित्र ऐसे ही चुनिए कि जो उक्त प्रकार के विचारधारण करते हों। बस, यही संकल्प शक्ति की उन्नतिका प्रथम सोपान है।

लन्दन में प्रेतात्मविद्या के अद्भुत दृश्य।

(श्री. पं. ठाकुर दत्त शर्म्मा वैद्य लिखित)

श्री. पं. जी योरूपकी यात्रा से अभी वापिस आये हैं। आप ने कई लेख पंजाब के पत्रों में प्रकाशित कराये यह उनका पत्र नं १० है जो एक आवश्यक विषय का प्रकाश डालता है मैं ने पिच्छले लेख में रुहों (प्रेतात्माओं) की बातें लिखने की प्रतिज्ञा की थी। इनको आज लिखता हूं।—

योरुप तथा अमेरिका में प्रेतात्मविद्या के बडे माननेे जानने बढ रहे हैं। इस विद्याको Spiritualism कहते हैं। इन लोगों का विचार अब यह हुआ है कि यह संसार केवल सरायके सदृश है, और इस के आगे दूसरा संसार है जिसमें सूक्ष्म शरीर के साथ सब कोई सदैव रहते हैं वह हमको और यद्यपि हम उनको नहीं देखते परन्तु वे हम से बात चीत भी करना चाहते हैं, हमको दिखाई देना भी चाहते हैं, हमको प्रयत्न करना चाहिए, तब देख भी सकते है बात चीत भी कर सकते हैं। मिस्टर सटैड जैसे प्रसिद्ध पुरुष पत्र सम्पादक इस में विश्वास रखते हैं। आज कल सर आलिवर लाज जैसे पुरुष परलोकविद्या समिति के सदस्य है इस विषय पर इतनी पुस्तकें लिखी गई हैं कि अलमारियों की अलमारीयां भर जाती हैं। कई पत्र परलोकविद्या के विषय में ही निकलते हैं। पत्रों की बातें पढ कर भारतवर्षी पत्रों में इस विद्या की अजीव अजीव बातें लिखी जातीहैं। लन्दन में रहते हुए मैं ने इस विषयका भी परिचय लेना चाहा।

विज्ञापन बहुत से निकलते हैं, थोडे पुरूष और अधिक स्त्रियें कई प्रकार की बातें फीस लेकर बतलाते हैं इन में किसी के पास जाऊंपहिले मेरे लिए कठिनता यही थी, प्रथम कई लेखकों के पास गया जिन की प्रेतात्मविद्या की पुस्तकों का बडे चाव से पठन पाठन किया जाता है परन्तु मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वे स्वयं रूह के अभ्यासी नहीं समाचार पत्रों के सम्पादकों के पास गया उनको भी अभ्यासी न पाया, हां इनसे पते जरूर प्राप्त किये।

मिस्टर स्टैंड की लडकी मिस स्टैड भी इस विषय में बडा काम करती रहती हैं। इनको मिलने से बडी सहायता मिली। परलोक विद्याकी आमिल यहां अधिक तर स्त्रियें पायीं।

साधारण बातों की मुझे इच्छा न थी मैं तो कोई बडी बात देखने का उत्सुक था, मैं यहां कुछ स्त्रियें ऐसी हैं जो समझा जाता है कि वह प्रेतों को देखती हैं और इनको रुहें सदैव दृष्टीमें आती हैं, कई ऐसी हैं जो रुहों के शब्द सुनती हैं, रूहें इनको सब कुछ बतलाती हैं सारे इन्गलिस्तान में चन्द एक पुरुष तथा स्त्रियें ऐसी हैं जो कि चाहें किसी पुरुषका चित्र ले लेवें तो इसके साथ रुह जो जो उनके साथ होगी उसका भी चित्र आ जावेगा और ऐसे चित्र समाचार पत्रों में कई वार हम ने देखे थे और पाठकों ने भी देखे होंगे। एक और स्त्रियों की ऐसी शक्ति है कि यदि वह किसी स्थान में बैठी हों, तो रूहों को ऐसी शक्ति इन से मिल जाती है कि वह बोलती हैं और आप सुन सकते हैं। पहिली दो बातों में कोई संशय भी हो, परन्तु दूसरी दो बातें यदि ठीक हों तो फिर मनुष्य कैसे इस विद्या में शंका कर सकता है यह सब विचार थे। यह लोग अपने पबलिक अधिवेशन भी करते हैं. जिस में जांच पडताल करने वालों वा दर्शकों को जांचने का भी अवसर मिलता है, सब से प्रथम इनके एक जलसे में गया. पूर्ण गम्भीरता से कार्य्य हो रहा था, भजन गाये गये, प्रार्थना की गई इसके पश्चात् मिस्टर जार्ज प्रा स्टर ने व्याख्यान दिया, उन्होंने कहा कि हम को विश्वास हो गया है कि इस जीवनके पश्चात् दूसरा नित्य जीवन है। इसाई आदि हमको काफिर कहें या कुछ कहें परन्तु हमको जो सत्यता प्रतीत होती है इससे अस्वीकार कैसे किया जावे? हम सबको निमंत्रण करते हैं कि आवें और परीक्षा करें तत्पश्चात् मिसिज फलारेंस किङ्गस्टन खडी हुई, यह मृत प्रेतोंको देखती और सुनती

है, उन्होंने किसी किसी को बतलाना आरम्भ किया कि अमुक स्त्री जो बैठी है या अमुक पुरूष जो वहा बैठा है आपके समीप एक रूह खडी है इसकी ऐसी आकृति है ऐसे वस्त्र है। जब आकृति का भली प्रकार वर्णन हो चुका तो, तब वह पूछती कि क्या कोई ऐसी आकृति का इसका सम्बन्धी मरा है जब वहां हां में उत्तर आता है तो वह और बाते बतलाती है कई हालतों में पुरुष स्त्रियों ने कहा, कि हां इनका अमुक एक सम्बन्धी मरा है परन्तु कईयों ने न में उत्तर दिया, कि हमारा ऐसा कोई सम्बन्धी नहीं मरा है।कोई लोग प्रसन्न थे परन्तु मुझे इस से सन्तोष नही हुआ, ऐसी कई बातें रावल भी बतला दिया करते हैं कुछ का कुछ कहते जाने से भी कई बाते सत्य निकल आती है। मै ने भी एक दिन यह कौतुहल किया था, एक दिन कई जेंटिलमैन तथा लेडियां एकत्र थीं, यहां ऐसी सूरत हो मेरी पगडी इन का ध्यान आकर्षण को पर्याप्त होती है। कुछ बीच मे घुसकर दिल्लगी सूझी। मै ने पास ही बैठी हुई लेडी को कहा कि मैं हस्तरेखा देखना जानता हूं, उसने हाथ मेरे सन्मुख कर दिया छोटी आयू से कभी कभी कोई हाथ की रेखाओं के सम्बन्ध में सुना हुआ था। मैने उसको बतलाना आरम्भ किया, एक बार तुम पर अत्यन्त भयानक रोगका आक्रमण हुआ था, हां ठीक है, एक बार तुमको जलभय प्राप्त हुआ था। हां, एक पुरूष मुझ को नौका में ले गया था, नौका भंवर में आगई थी उसदिनसे मै कभी नौका पर नहीं चढी। मैने कहा तुम्हारी दो बार सगाई हुई प्रतीत होती है। वह तो अत्यन्त चकित रह गई। हां मेरे दो पति हो चुके है परन्तु यह तो बतलाओ कि अब मेरे विवाह की आशा है अथवा नहीं? मैने कहा हां अभी आशा है। अब तो सबका ध्यान हुआ कोई इधरसे कोई उधरसे हाथ मेरे सामने होने लगे। एक पुरुषने कहा कि मेरे विवाह की आशा है वा नहीं, मैने कहा कि तुम्हारा विवाह तो साफ एक लिखा है मेरा अभिप्राय तो और था परन्तु वह शीघ्र वह उठा कि इस स्त्रीने तो मेरा सत्यनाश कर दिया है अब मै उसको छोड चुका हूं, अब दूसरा विवाह होगा वा नहीं। वह एक स्त्रीसे अधिक हिला मिला था मैने उसी की ओर ईशारा करके कहा कि आशा तो है, वह दोनो समझ गये और दोनो प्रसन्न हुए, परन्तु कहां तक यह आडम्बर चले, अंत मे मै ने गर्व दिखाना शुरू किया, केवल कोई कोई बात किसी को कह देता। इसी प्रकार कुछ बातों का ठीक निकल आना कोई सत्यता की युक्ति मेरे लिये न थी अब मेरी इच्छा हुई कि ऐसी किसी स्त्री को सन्मुख मिलना चाहिये। मिस्टर ब्रिटन एक इसी प्रकार कीसमितिके जो स्पिरिच्युॲलिझम सिखती है मन्त्री है। इनकी धर्मपत्नी इस कार्य्य में बडी प्रसिद्ध है। मै ने उन से प्रार्थना की, और उन्हों ने मेरी प्रार्थना को बडे प्रेम और सत्कार पूर्वक स्वीकार किया। मिसिज ब्रूटन तथा मै एक कमरे मे बैठे थे। साधारण ऋतु की बात चीत के पश्चात् जो कि यहां का नियमसा है उसने नेत्र थोडे बन्द किये और कहा कि आपके साथ मै एक छोटेसे लडके को देख रही हूं कोई बारह वर्ष की आयु का प्रतीत होता है। जब कि वह मरा था परन्तु अब वह युवावस्था में होगया है। वह सदैव आपके अंग संग रहता है। आप जो परलोक सम्बन्धी बातों का शौक रखते है इस से वह बहुत प्रसन्न है। उसके मुखकी कान्ति उस की ऐसी है। मै ने कहा आकृति तो मैं भूल चुका, मेरा लडका आठ वर्षकी आयु में मरा था, उसने कहा ठीक आयु बतलाना कठिन ही है। मस्तिष्क की व्याधि से वह मरा था, मै ने

कहा ठीक है, प्रथम तो उसके उदर में रोग था, परन्तु मृत्यु समय उसके मस्तिष्क पर प्रभाव हो गया था, हां इसके साथ एक मनुष्य खड़ा है, सम्भव है आप के पिता हों, इसकी दाढी भरी हुई है मै ने कहा वह भी मरे थे परन्तु वह किस रोग से मरे थे? इसका उत्तर ठीक नहीं था, फिर उसने कहा एक स्त्री भी उनके साथ खडी है लडका नानी बतलाता है यह स्थूल सी सुन्दर स्त्री है बहुत वृधा प्रतीत नहीं होती, मै ने कहा वह अधिक स्थूल कभी नहीं थी परन्तु उसकी किस रोग से मृत्यु हुई थी, इसका उत्तर भी ठीक न था, फिर उसने कहा कि यह सब जो, आप काम कर रहे हैं इस से प्रसन्न है और आप से बात चीत करना चाहते है आप के अन्दर शीघ्र ही प्रेतात्माओं को देखने सुनने की शक्ति आ सकती है इस प्रकार की बातें होती रहीं परन्तु एक महाशय ने मेरे साथ प्रतिज्ञा की थी कि वह ऐसे पुरुष को मिला देंगे जिस के पास एक रूह हिन्दुस्तान से आती है और अपनी भाषा में बाते करती है इस लिये मैं ने शीघ्र जाने की इच्छा प्रकट की, और दो तीन प्रश्न करने चाहे। मै ने कहा कि प्रेतात्मा का सूक्ष्म शरीर तो हो सकता है परन्तु वस्त्र आप कैसे वर्णन करती है। उसने उत्तर दिया, कि रूहें बहुधा अपने आपको ऐसे भेषमें पेश करती हैं जो उनको अधिक रुचिकर था। अथवा जो मरण समय था, और रूपभी बहुधा वही होता है जो मृत्यु के समय था। यह इनके विचार की शक्ति है। मैंने कहा कि हिन्दुस्तान की रूह आपसे अंगरेजी में बात चीत कैसे कर सकती है? इसका उत्तर उसने यह दिया कि दूसरी रूहें जो समीप होती हैं वह हमारे अनुवादक का काम कर सकती हैं। मैंने कहा आप इस विद्याका क्या लाभ समझती हैं? और आपपर इसका क्या प्रभाव हुआ है? मिसिज बट्टन ने कहा कि हमें इससे उत्तम जीवन का विश्वास हो गया है, इस जीवन की अपेक्षा आगामि जीवनको बहुत चाहती हैं। और दूसरों के लिये भी कई वार प्रसन्नता का कारण हुये है जो लोग जीवनसे मरण को उत्तम समझते थे उनको जब इनके सम्बन्धियों की बातें बतलाईं तो वह अपनी सर्व सम्मातियों का परिवर्तन करते हुए सहर्ष कार्य में लग गये, मिसिज बट्टन का धन्यवाद करके बाहिर मिस्टर वर्टन महोदयके समीप आया उन्होंने चित्र निकाल रखेथे जो कि प्रेतोंके चित्र इनके एक साधक ने भी ली है, किन्तु एक चित्र साथ भेजता हुं जो बहुत मनोरञ्जक है। मैं शीघ्र जाने के लिये क्षमा मांग कर बाहिर आया और उस महोदय के पास पहुंचा परन्तु शोक है कि वह रुग्ण थे और अपनी देशी रूह की बातें न सुनसका। मिसिज बट्टन की बातोंसे कुछ विस्मयात्मक अवस्थामें था न इधरका न उधरका, यद्यपि निश्चय यह सारे सम्बन्धी मर चुके हैं यह इसको ज्ञान तो थाही नहीं परन्तु यदि यह दिखाई देती हैं और वह इनकी बातों को सुनती है तो बातें मिथ्या भी क्यों होतीं है। अब तो अन्वेषणेच्छा और भी बढ़ी परन्तु यहां भी यही कठिनता थी कि अगस्त मास अवकास का इनके उत्सव बन्द इनके अभ्यासी या साधक बाहिर। अन्तमें मिस स्टैडके पास पहुंचा मैं ने कहा कि रूहोंसे बातें करा दो और उनके चित्र ले दो, उन्होंने मेरे साथ दोनो स्त्रियोंसे समय नियत करा देने की प्रतिज्ञा की और वास्तवमें ही उनसे समय नियत करके मुझे लिख दिया।

छप गया ! छप गया ! ! छप गया !!!

वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य ।

(लेखक – प्रो० चद्रमणि विद्यालंकार पालिरत्न कांगडी)

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं–

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी के वेदोपाध्याय श्री. पं. चंद्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न ने मातृभाषा हिन्दी में निरुक्त का अनुवाद और व्याख्या करके आर्य–जगत् का बडा उपकार किया है। इस में सन्देह नहीं कि निरुक्त की वर्तमान टीकाओं द्वारा वेदार्थ में बहुत से भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं, उनके दूर करने का यथाशक्ति बहुत उत्तम प्रयत्न किया गया है। छपाई अच्छी है। मेरी सम्मति में प्रत्येक वैदिक-धर्मी के निजू पुस्तकालय में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

श्रीयुत महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा, एम. ए. पी. एच. डी. वाइस चान्सलर, अलाहाबाद युनिवर्सिटी लिखते हैं–

मैं समझता हूं कि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये आपने बहुत समय और मनोयोग अर्पण किया है। मैं बहुत देर से अनुभव करता था कि हम लोगोंने निरुक्त पर उतना प्रयत्न नहीं किया जितना कि ऐसे आवश्यक पुस्तक पर किया जाना चाहिए था। इसी लिये मुझ सरीखे पुराने कार्यकर्ताओं के लिये यह बडे सन्तोष का विषय है कि हमारी नयी सन्तति में आप जैसे उच्च योग्यतासम्पन्न विद्वान निरुक्त पर कार्य करने वाले विद्यमान हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि आपका यह प्रथम भाग नेतालोगों से पर्याप्त सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त करेगा कि जिससे आप निरुक्त भाष्य के अवशिष्ट भाग के प्रकाशन में समर्थ हो सकें।

श्री मा० आत्माराम जी एज्युकेशनल इन्सपेक्टर बडोदा लिखते हैं।

मैने आपका वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य देखा। इस ग्रन्थ ने एक बडी भारी कमी को पूर्ण किया है। इस अनुसंधान-युगमें प्रत्येक समाज, पुस्तकालय, गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय में आप के इस उपयोगी ग्रन्थ की एक प्रति होनी चाहिए –ऐसा मेरा दृढ मत है। इस के प्रकाशन पर मैं आपको मंगलवाद कहता हूं। आपका काम सफल है।

वेद प्रेमियों को वेदसंबन्धी इस अत्यावश्यक पुस्तक को अवश्य पढना चाहिए। पृष्ठसंख्या ५०० और कीमत डाकव्यय रहित ४॥) रु० है।

ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तकें

१ वेदार्थ करने की विधि १० आने
२ स्वामी दयानन्द का वैदिक स्वराज्य। ५ आने
३ महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत ६ आने

निरुक्त के ग्राहकों को तीनों पुस्तकें केवल बारह आने में मिलेंगी।

पता– प्रबन्धकर्ता अलंकार गुरुकुल कांगडी (जि. बिजनौर)

स्वाध्याय के ग्रंथ

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या । नरमेध । मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।१)

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या । सर्वधर्म । " एक ईश्वरकी उपासना । " मू. ॥)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या । शांतिकरण । " सच्ची शांतिका सच्चा उपाय ।" मू. ॥)

[२] देवता-परिचय ग्रंथ माला ।

(१) रुद्र देवताका परिचय । मू. ॥≈)

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता । मू. ॥≈)

(३) ३३ देवताओंका विचार । मू. ≡)

(४) देवताविचार । मू. ≡)

(५) वैदिक अग्नि विद्या । मू. १॥)

[३] योग-साधन-माला ।

(१) संध्योपासना। मू. १॥)

(२) संध्याका अनुष्ठान । मू. ॥)

(३) वैदिक-प्राण-विद्या । मू. १)

(४) ब्रह्मचर्य । मू. १।)

(५) योग साधन की तैयारी। मू. १)

(६) योग के आसन मू. २)

(७) सूर्यभेदन व्यायाम । मू. ।≈)

[४] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा । प्रथमभाग -)

(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा । द्वितीयभाग =)

(३) वैदिक पाठ माला । प्रथम पुस्तक ≡)

[५] स्वयं शिक्षक माला।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक । प्रथमभाग । १॥)

(२) वेदका स्वयं शिक्षक । द्वितीय भाग १॥)

[६] आगम-निबंध-माला ।

(१) वैदिक राज्य पद्धति । मू. ।-)

(२) मानवी आयुष्य । मू. ।)

(३) वैदिक सभ्यता । मू. ॥)

(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र । मू. ।)

(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ॥)

(६) वैदिक सर्प-विद्या । मू. ॥)

(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय । मू. ॥)

(८) वेदमें चर्खा । मू. ॥)

(९) शिव संकल्पका विजय । ॥)

(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता । मू. ॥)

(११) तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ॥)

(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र । मू. ≡)

(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न । मू. =)

(१४) वेदमें लोहेके कारखाने । मू. ।-)

(१५) वेदमें कृषिविद्या । मू. ≡)

(१६) वैदिक जलविद्या । मू. =)

(१७) आत्मशक्ति का विकास । मू. ।-)

[७] उपनिषद् ग्रंथ माला ।

(१) ईश उपनिषद् की व्याख्या । ॥≈)

(२) केन उपनिषद् ,, ,, मू. १।)

[८] ब्राह्मण बोध माला ।

(१) शतपथ बोधामृत । मू. ।)

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल;

औंध (जि. सातारा)